गंगा-पुस्तकमाला का १२१वाँ पुष्प

# अलका

[ सामाजिक उपन्यास ]

लेखक
श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
( परिमल, अप्सरा आदि के प्रणेता )

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३०, अमीनाबाद-पार्क,
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १।) ] सं० १९९३ वि० [ सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ
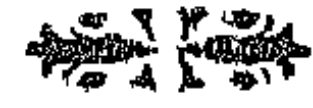
मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

# हार

जिस 'अलका' पर सावित्री की पूरी-पूरी छाया पड़ी है, आर्य-सभ्यता से उत्कर्षोज्ज्वल मित्रवर श्रीनंददुलारे वाजपेयी एम्० ए० उसे एक दृष्टि देखें।

# वेदना

मेरे जिन प्रिय पाठकों ने 'अप्सरा' को पढ़कर साहित्य के सर बराबर वैसी ही बिजली गिराते रहने की मुझे अनुपम सलाह दी, या जिन्होंने 'अप्सरा' को चुपचाप हृदय में रखकर मेरी तरफ़ से आँखें फेर लीं, अथवा जिन्हें 'अप्सरा' द्वारा पहलेपहल इस साहित्य के मुख पर मंद-मंद प्रणय-हास मिला, मुझे विश्वास है, वे 'अलका' को पाकर विरही यक्ष की तरह प्रसन्न होंगे, और अंडे तोड़कर निकलने से पहले, खड़खड़ाते हुए जिन्होंने मुझ पर आवाज़े कसे, वे एक बार देखें, उनके सम्राटों द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्ग-भूमि से मैंने कितने हीरे-मोती उन्हें दान में दिए।

मुझे आशा है, हिंदी के पाठक, साहित्यिक और आलोचक 'अलका' को अलकों के अंधकार में न छिपाकर उसकी आँखों का प्रकाश देखेंगे कि हिंदी के नवीन पथ से वह कितनी दूर तक परिचय कर चुकी है।

घटनाओं में सत्य होने के कारण स्थानों के नाम कहीं-कहीं नहीं दिए गए। मुझे इससे उपन्यास-तत्त्व की हानि नहीं दिखाई पड़ी।

लखनऊ
१।६।३३

'निराला'

# वक्तव्य

( द्वितीयावृत्ति पर )

कविवर निरालाजी के हमारे इस उपन्यास को भी हिंदी-संसार ने अपनाया, इसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं। आशा है, विभिन्न शिक्षा-संस्थाएँ इसे अपने यहाँ कोर्स में रखने की भी कृपा करेंगी।

कवि-कुटीर
लखनऊ
दीपावली, १९९३

# अलका

## ( १ )

महासमर का अंत हो गया है, भारत में महाव्याधि फैली हुई है। एकाएक महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारो ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय। विदेशों से, भिन्न प्रांतों से, जितने यात्री रेल से रवाना हो रहे हैं, सब अपने घरवालों की अचानक बीमारी का हाल पाकर। युक्त-प्रांत में इसका और भी प्रकोप। गंगा, यमुना, सरयू, बेतवा, बड़ी-बड़ी नदियों में लाशों के मारे जल का प्रवाह रुक गया है। गंगा का जल जो कभी खराब नहीं हुआ, जिसके माहात्म्य में कहा जाता था, दूसरा जल रख देने पर कीड़े पड़ जाते हैं, पर गंगा के जल में यह कलमष नहीं मिलता, वह भी पीने के बिलकुल अयोग्य बतलाया गया। परीक्षा कर डॉक्टरों ने कहा, एक सेर जल में आठवाँ हिस्सा सड़ा मांस और मेद है। गंगा के दोनो ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनके हरएक में एक-एक दिन दो-दो हजार लाशें पहुँचती हैं। जलमय दोनो किनारे शवों से टसे हुए, बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा; घोर दुर्गंध, दोनो ओर एक-एक

मील तक रहा नहीं जाता। जल-जंतु, कुत्ते, गीध, स्यार लाश छूते तक नहीं। नदियों से दूरवाले देशों में लोगों ने कुओं में लाशें डाल-डाल दीं। मकान-के-मकान खाली हो गए। एक परिवार के दस आदमियों में दसों के प्राण निकल गए। कहीं-कहीं घरों में ही लाशें सड़ती रहीं। वैद्य और डॉक्टरों को रोग की पहचान भी न हुई। यह सब नृशंस महामृत्यु-तांडव पंद्रह दिनों के अंदर हो गया। भारत के साठ लाख आदमी काम आए।

इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फ़तह की है, आनंद मनाओ; सब लोग अपने-अपने दरवाज़ों पर दिए जलाकर रक्खें। पति के शोक में सद्यः विधवा, पुत्र के शोक में क्षीण माता, भाई के दुःख में मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण से दुखी, असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर काँपते हुए शीर्ण हाथों से दिए जला-जलाकर द्वार पर रक्खे, और घरों के भीतर दुःख से उमड़-उमड़कर रोने लगीं। पुलिस घूम-घूमकर देखने लगी, किस घर में शांति का चिह्न, रोशनी नहीं।

जब घर में थी, शोभा के पिता का देहांत हुआ, तो गाँव का कोई नहीं गया। सब अपनी खे रहे थे। उस समय ज़िलेदार महादेवप्रसाद ने मदद की। उसके पिता की लाश गाड़ी पर गंगा ले गए। मन-ही-मन शोभा कृतज्ञ हो गई—कितने अच्छे आदमी हैं यह—दूसरे का दुख कितना देखते हैं! इसके बाद

उसकी माता बीमार पड़ीं। तब उन्हें युवती कन्या की रक्षा के लिये चिंता हुई। यदि उनके भी प्राण निकल जायँ, तो शोभा का क्या होगा, यह विचारकर उन्होंने विजय तथा ससुराल को पत्र लिखने के लिये शोभा से कहा। विजय शोभा का पति है। अभी तक उसने पति को पत्र नहीं लिखा। कभी चार आँखों की एक पहचान होने का अवसर नहीं मिला। वह कैसे हैं, वह नहीं जानती। फिर क्या लिखे? बैठी सोचती रही कि दुख-भरे स्नेह के कुछ कठोर स्वर से कर्तव्य का ज्ञान दे बिस्तरे से माता ने फिर कहा। स्वर पर बजने के लिये उँगली की तरह उठकर शोभा काग़ज़, क़लम और दावात लेने चली। दुःख में भी अज्ञात कोई हृदय के निर्मल, शुभ्र आकाश में अपरिमित सुख, सौरभ भरने लगा, अज्ञात मुँदी हुई जैसे कोई कली इस आदेश-मात्र से खुल गई, और अपना लेश-मात्र सौरभ अब नहीं रखना चाहती। दावात, क़लम और काग़ज़ ले आ, सरल चितवन निष्कलंक पंकजा ने माता से पूछा, क्या लिखूँ अम्मा? घर का सब हाल और ऐसी दशा में तुम्हें ले जाना अत्यंत आवश्यक है, लिख दो, माता ने कहा। ससुराल को मेरे नाम लिख देना, आपकी समधिन कहती हैं, इस तरह।

किसे किस तरह पत्र लिखना चाहिए, इतना शोभा को मालूम था। चिट्ठी लिखने की किताब पढ़ने से जैसे संस्कार बन गए थे, वैसे ही, दाब के दबाव में लिख गई—"प्रिय", परंतु फिर उस शब्द को मन-ही-मन हँसकर, न-जाने क्या सोचकर,

लजाकर काट दिया। फिर लिखा—"महाशय", पर शब्द जैसे एक सुई हो, कोमल हृदय को चुभने लगा। फिर बड़ी देर तक सोचती रही। कुछ निश्चय नहीं हो रहा था। एकाएक भीतर की संचित संपूर्ण श्रद्धा पत्र लिखने की पीड़ा के भीतर से निकल पड़ी, और उसने लिखा—"देव"; फिर नहीं काटा। मन को विशेष आपत्ति नहीं हुई। देवतों ने जैसे भय, बाधा, विघ्न, सब दूर कर दिए। दूसरा भी लिखा। पत्र पूरे कर माता को सुनाने के लिये पूछा। माता ने कहा, क्या आवश्यक है, मतलब सब लिख ही गया होगा, अपने हाथ डाकखाने में छोड़ आओ। पत्र लिफाफे में भरकर, पता लिखकर डाकखाने छोड़ने चली। आँचल में दुनिया की दृष्टि से दूर अपने मनोभावों का प्रमाण छिपा लिया। पत्र में वह अपने अलख सखा को, हृदय के सर्वस्व को कुछ भी नहीं दे सकी, एक भी बात ऐसी नहीं, जो वह अपनी माता के सामने न पढ़ सकती, सिवा इसके कि मुझे जल्द आकर ले जाइए, अम्मा को मेरी तरफ से घबराहट है। पर फिर भी उसका हृदय कह रहा था कि उसने अपना सब कुछ दे दिया है। लाज की पुलकित पुतलियों से इधर-उधर देख, अपने प्रिय संशय को प्रमाण में परिणत होते हुए न पा, पत्रों को आँचल से बाहर कर चिट्ठीवाले बॉक्स में डाल दिया, और अचपल मंद-मृदु-चरण-क्षेप मूर्तिमती महिमा-सी, अनावृत-मुख बढ़ती हुई माता के पास लौट आई। दूसरे दिन चलते हुए तूफान का एक झोंका और लगा, माता

का कंठ कफ से फेफड़े जकड़ जाने पर रुँध गया, देखते-देखते पुतलियाँ पलट गईं। उनका देहांत हो गया, वह छाँह की एक-मात्र शाखा भी टूटकर भू-लुंठित हो गई। अब संसार में कुछ भी उसकी दृष्टि में परिचित नहीं। इस एकाएक प्रहार से स्तब्ध हो गई। संसार में कोई है, संसार में उसकी रक्षा कौन करेगा, कुछ खयाल नहीं, जैसे केवल एक तस्वीर निष्पलक खड़ी हो, समय आप आता, आप चला जाता है, समय का कोई ज्ञान नहीं। जैसे किसी निष्ठुर पति ने विना पाप ही अभिशाप दे प्राणों की कोमल, रूपवती तरुणी को प्रस्तर की अहल्या बना दिया है। महादेव कब से आया हुआ खड़ा है, उसे इसका ज्ञान नहीं। उसे उस हालत में खड़ी हुई देख महादेव के हृदय में एक बार सहानुभूति पैदा हो गई। पर उसे तरक्क़ी करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुँची है, वह ग़रीब है, इसीलिये अमीरों के तलवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं—उन्हें भी आदमी करना है, लड़कियों की शादी में तीन-तीन, चार-चार और पाँच-पाँच हजार का सवाल हल करना है, इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह संसार की मंजिल वह कैसे तय करेगा?

"शोभा!" महादेव ने आवाज दी। शोभा होश में आई। "अब चलो, प्यारेलाल के यहाँ तुम्हें रख आवें। कोठरियों में ताले लगा दें, दो, कुंजियों का गुच्छा ले आओ, ताले कहाँ हैं, क्या किया जाय बेटी, इस वक़्त दुनिया पर

यही आफ़त है, फिर तुम्हारी मा को गंगाजी पहुँचाने का बंदोबस्त करें।"

माता का नाम सुनकर, स्वप्न देखकर जगी-सी होश में आ मृत माता पर उसी की एक छोटी, क्षीण लता-सी लिपट गई। अब तक सहानुभूति दिखलानेवाला कोई नहीं था, इसलिये तमाम प्रवाह आँसुओं के बाष्पाकार हृदय में टुकड़े-टुकड़े फैले हुए एकत्र हो रहे थे। स्नेह के शीतल समीर से एकाएक गलकर सहस्र-सहस्र उच्छ्वासों से अजस्र वर्षा करने लगे। महादेव स्वयं जाकर प्यारेलाल तथा उसकी स्त्री को बुला लाया। ज़मींदार के डेरे का नौकर गाड़ी साजकर ले चला। कुछ और लोग भी, इस महा विपत्ति में सहानुभूति दिखलाना धर्म है, ऐसा धार्मिक विचार कर, आए। शोभा को माता से हटा, कोठरियों में सबके सामने ताले लगाकर प्यारेलाल ने कुंजी महादेव को दे दी। प्यारेलाल की स्त्री शोभा को अपने साथ ले गई। उसके घर का कुल सामान एक पुर्जे में लिखकर डेरे भिजवा महादेव उसकी मा की लाश गंगाजी ले गया। तमाम रास्ता यही निर्णय रहा कि शोभा को किसी तरह मुरलीधर के हवाले कर पाँच-छ हज़ार की रक़म अपने हाथ लगाए। लौटकर शोभा की खुश-खबरी मालिक को सुनाने के लिये सदर गया। शोभा से कह गया, उसकी ससुराल खबर देने जा रहा है। वहाँ की खबर जानकर उसे लौटकर ससुराल ले जायगा। शोभा सोचती थी, कई दिन

हो गए, वह क्यों नहीं आए? उस घर में अच्छा न लगता था, जैसे वे आदमी बहुत दूर हों, इतने नजदीक रहकर भी साथ नजदीक का कोई बर्ताव नहीं करते। रह-रहकर दुःख से गला भर आता है, पर रोती नहीं, दुःख और बढ़ता है।

शाम हो चुकी। घर-घर सरकार की विजय के दीपक जलने लगे। डेरे पर और प्यारेलाल के मकान में सब जगह से ज्यादा प्रकाश है। प्यारेलाल की स्त्री, लड़के, लड़कियाँ द्वार पर बैठी प्रसन्न आँखों से दीपों का प्रकाश देख रही हैं। इसी समय शोभा की हम-उम्र गाँव की एक लड़की कहारों की भीतर गई। शोभा चिंता में डूबी हुई थी। लड़की ने धीरे से छू दिया। इसका नाम राधा है। इसकी मा शोभा के यहाँ टहल करती थी; इसी इन्फ्लूएंजा में गुजर गई है। राधा पड़ोस के एक कहार के यहाँ रहती थी। उसके शौहर को खबर कर दी गई थी। अब वह अपनी स्त्री को ले जाने के लिये आया है। सुबह वह चली जायगी। शोभा से मिलने आई है।

फिरकर शोभा ने देखा, राधा है। राधा सटकर बैठ गई, और उसके एक हाथ की मुट्ठी अपने दोनो हाथों में भर ली, और धीरे सतर्क पूछा—"कोई है तो नहीं?"

"न।" शोभा सूखे आँसुओं की मुरझाई दृष्टि से देखकर बोली।

"कल मैं जाती हूँ। आए हैं। एक बात मालूम हुई। वह वही नौकर हैं, जिनसे यह गाँव है। उन्हें मालूम हुआ है, महादेव की कुल कारगुजारी झूठ, तुम्हें फँसाने के लिये है।

वह आज वहाँ से मोटर लेकर आया है। ससुराल के बहाने रात को सबकी आँख बचा तुम्हें वहीं ले जायगा। वहाँ किसी की इज़्ज़त नहीं बचती। वह पूछते थे कि इस गाँव में कोई शोभा है। मैंने कहा, हाँ। तब सारा हाल बतलाया। मैंने उन्हें समझाया कि हम लोग मेहनती आदमी हैं, जहाँ मेहनत करेंगे, वहीं कमाएँगे, खाएँगे। वहाँ की नौकरी आज ही से छोड़ दो। वह मान गए। कानपुर में मेरा देवर रहता है। कल तड़केवाली गाड़ी से हम लोग कानपुर जायँगे। आदमियों का कुछ चलना-फिरना बंद होने पर महादेव तुम्हें ले जाने के लिये आवेगा। मोटर गाँव से कुछ दूर पर खड़ी है।"

एकाएक शोभा में संपूर्ण चेतना आ गई। मनहारिन की बात, उसका आशय क्या हो सकता है, राधा की बात से पूरा-पूरा प्रमाण मिल गया। घबराकर बोली—"तो मुझे यहीं छोड़ जायगी?"

"नहीं, तुम्हें निकलने का रास्ता बतलाऊँगी। मैं साथ नहीं जा सकती। चाची ने मुझे देख लिया है। शक करेंगी, अगर तुम मेरे साथ न लौटीं। फिर लोग मुझे कहेंगे, कुछ कर दिया। वह यहीं हैं। पकड़ जायँगे। इससे किशोरी को साथ लेकर देवी के दर्शन करने जाओ। लौटकर, उसे रास्ते पर खड़ी कर, वासुदेव बाबा के दर्शन का बहाना कर बग़ीचे जाना। फिर जल्द-जल्द बग़ीचे-बग़ीचे दूर निकल जाना। एक मील ठीक उत्तर जाने पर एक कच्ची सड़क मिलेगी। उसी सड़क-सड़क पाँच मील चलने

के बाद दाहने हाथ स्टेशन है, जो हमारे स्टेशन के बाद पड़ता है। कल पाँच बजे सवेरेवाली गाड़ी से हम लोग भी जायँगे। दूसरे स्टेशन पर मिलना। उनसे कहकर मैं एक टिकट कटवा लूँगी, फिर तुम्हें कानपुर में तुम्हारी ससुराल भेजवा दूँगी। अच्छा, मैं जाती हूँ, किशोरी को भेज दूँ।"

मुस्किराती हुई राधा बाहर निकली। "क्या है राधा ?" प्यारेलाल की स्त्री ने पूछा।

"कल जा रही हूँ चाची, शोभा दीदी से मिलने आई थी।"

"पाहुने लिवाने आए हैं ?"

मधुर, लजीली निगाह नीची कर राधा ने कहा - "चाची, शोभा दीदी किशोरी को बुला रही हैं।"

"हुकुम के मारे नाक में दम हो गया। देखो तो किशोरी, क्या काम है।"

राधा धीरे-धीरे, चाची को अपने रास्ते की पहचान कराती हुई, सामनेवाली राह से हलवाइयों की दूकान के उजाले से होकर, ठंडे भाड़ के किनारे भुजइन भौजी की बगल में बैठकर अपने जाने की बातचीत करने लगी, जैसे बिदा होने से पहले मिलने गई हो। घंटे-भर बाद, शोर-गुल उठने पर, भुजइन, हलवाइन तथा पड़ोस के दूसरी स्त्रियों और लोगों के साथ मौक़े पर पहुँचकर शोभा के ग़ायब होने पर सबके बराबर ताज्जुब दिखला, अपने निर्लिप्त रहने का मौन प्रमाण देती, उखड़ती हुई जनता के साथ, सबके स्वर में स्वर मिलाकर

कहती हुई कि पहले से कोई साधक-सिद्धवाला मामला रहा होगा, घर गई, और पति की चुभती चितवन से मन के समाचार दे रस भरकर अपनी दोनो तरह की विजय समझा दी।

---

( २ )

बाबू मुरलीधर अवध के आकाश के एक सबसे चमकीले तारे हैं, जहाँ तक ऐश्वर्य की रोशनी से तअल्लुक़ है, यानी सबसे नामी तअल्लुक़ेदार। कहते हैं, कभी उनके दीपक में इतना तेल न था कि रात को उजाले में भोजन करते, बात उनके पूर्वजों पर है। उनके यहाँ शाम से पहले भोजन-पान समाप्त हो जाता था। यह विशाल संपत्ति उनके पितामह ने अँगरेज़ सरकार की तरफ़दारी कर प्राप्त की। ग़दर के समय बकरियों के बच्चे ढकनेवाले बड़े-बड़े झाबों के अंदर बंद कर कई मेम और साहबों को बाग़ियों से इन्होंने बचाया था। फिर जब राय विजयबहादुर की फाँसी के समय, उनके महान् भक्त होने के कारण, तीन बार फाँसी की रस्सी कट-कट गई, और गोरे बहुत घबराए, तब उनके गले में फाँसी लगने का उपाय इन्होंने बतलाया कि यह विष्णु भगवान् के बड़े भक्त हैं, जब तक इनका धर्म नष्ट न होगा, इन्हें फाँसी नहीं लग सकती; इसलिये मुर्ग़ी के अंडे का छिलका इनकी देह से छुला दिया जाय। साहबों ने ऐसा ही किया तब फाँसी लगी। मुरलीधर के पितामह भगवानदास को अँगरेज़ सरकार ने इन कार्यों का पुरस्कार हज़ार गाँव साधारण लगान और दूसरे तअल्लुक़ेदारों से

अनुकूल ख़ास-ख़ास शर्तों पर दिए, तब से इनका रात का दिया जला।

जब से मुरलीधर पैत्रिक सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन-प्रथा के अनुसार सरकारी अफ़सरों की सोहावनी सोहनी छेड़ते जा रहे हैं। पर अभी तक सरकारी अफ़सरों की सिफ़ारिश से किसी प्रकार का उर्दी-प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ। पेट जितना भी भरा रहे, आशा कभी नहीं भरती। वह जीवों को कोई-न-कोई अप्राप्य, कुछ नहीं या केवल रंगों की माया का इंद्र-धनुष प्राप्त करने के मायावी दलदल में फँसा ही देती है। लक्ष्मी के वाहन प्रभूत प्रभुता की डाल पर बैठे हुए इन महाशय उलूक को इसी प्रकार रात में प्रभात देख पड़ा। उपाधि बिना उपाधि के नहीं मिलती। इन्होंने भी उपाधि-प्राप्ति के लिये उपाधि-वितरण शुरू किया। थोड़े ही दिनों के अध्यवसाय से इन्हें यथेष्ट परिज्ञान भी प्राप्त हुआ कि सरकारी अफ़सरों में शासक और शासन का भाव प्रबल होने के कारण मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विशेष प्रचलित हैं। अतः शक्ति के ये लोग उपासक हैं, और बाक़ायदा पंचमकार-साधन करते हैं। तब मुरलीधर ने भी केवल तान छेड़नेवाली मुरली छोड़ दी। मन और वाणी के बाद कर्म से भी सदुद्देश की सिद्धि के लिये लगे। विशाल संपत्ति के अधिकारी होने पर भी, सरकारी अफ़सरों के सिवा, मुरलीधर के पितामह से ऊँचे वंश के स्वजाति और विजातिवालों का

खान-पान बंद था। बराबरवाले भी बराबर नहीं बैठे। मुरलीधर के पिता का विवाह बड़ी नीच शाखा की लड़की से हुआ था, जिसके पिता ने लड़की देकर दारिद्र्य के हाथ निस्तार पाने का उपाय भी साथ-साथ सोचा था। मुरलीधर के पितामह के कृत्यों की इलाक़े में घर-घर चर्चा थी। बाहर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा था। इस वैमनस्य को दूर करने में मुरलीधर के पिता गिरिधारीलाल ने नाल ठोंककर सफलता प्राप्त की। बात यह हुई कि उनके समय में आर्य-समाज का जोरों से आंदोलन शुरू हुआ। हिंदू-समाज की इमारत इस भूकंप से बार-बार हिलने लगी। मूर्तियों के मृदुल पूजा-भावों पर बार-बार मामूद की-सी प्रखर तलवार के वार होने लगे। हिंदू-जनता के मूर्ति-पूजन के भय को प्रश्रय देकर सनातन-समाज की निष्ठा पर प्रतिष्ठित होने के विचार से उन्होंने यह मौक़ा हाथ से न जाने दिया। देश-देशांतरों से प्रकांड पंडित बुलवाकर एक विराट् सभा कराई। आर्य-समाज के पंडितों और प्रचारकों को भी निमंत्रण भेजा। अपने इलाक़े से "सत्य सनातन-धर्म की जय" बोलने के लिये हजारों स्वयंसेवक भक्तों को एकत्र किया। विवाद के दिन आर्य-समाजी पंडितों के भाषण के समय पुनः-पुनः "सनातन-धर्म की जय" के नारे उठने लगे। भाषण नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज हो गए। सनातनी पंडितों के समय "धन्य है, धन्य है" होने लगा। इसके लिये उन्होंने अपनी तरफ़ से एक डिक्टेटर नियुक्त कर रक्खा था। पश्चात्

"आर्य-समाज की जय हो" के अभिवादन से सभा समाप्त कराई। सत्यनारायणजी की कथा का प्रसाद बँटा। सनातनी पंडितों को मोटी-मोटी विदाइयाँ मिलीं। जनता खुले दिल गिरिधारीलाल के धर्म की तारीफ़ करने लगी। इस तरह प्राचीन कलंक नवीन धार्मिक उज्ज्वलता से धुलकर जनता के हृदय के तत्त्व में ही मिल गया। गिरिधारीलाल ने अपनी महत्ता से अब समाज का गोबर्द्धन धारण कर लिया। उनकी इस उच्चता का उन्हें वांछित वर भी मिला। ज़मींदारी के लोगों के प्रत्येक प्रकार के ताप का भाप द्रवित हो-हो वहीं बरसने लगा, और गिरिधारीलाल गिरिवर की ही तरह ऐश्वर्य के जल से भरते रहे। बढ़ा हुआ जल सनातन प्रथा के नदी-पथ से बराबर सरकार के समुद्र की ओर बहता रहा ज़मींदारी के लोग प्यास बुझाने के लिये बराबर पत्थर फोड़-फोड़कर कुएँ बनाते रहे।

पितामह ने संपत्ति प्राप्त की, पिता ने प्रतिष्ठा। अब मुरलीधर के लिये दुरूह दुर्ग कोई विजय के लिये रह गया, तो प्रतिष्ठा के अनुकूल ख़िताब। इनसे हैसियत के बहुत छोटे-छोटे तअल्लुक़ेदार अपने ख़िताब की शान में इनकी तरफ़ देखते भी नहीं। बातें कहते हैं, जैसे दोमंज़िलेवाला सड़कवाले से बोलता हो। यह सब उनके लिये, जिनके पास अधिक संपत्ति हो, सहन कर जाने की बात नहीं।

अफ़सरों को ख़ुश कर पदवी प्राप्त करने का अचूक मंत्र

मुरलीधर को उनके सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल ने दिया। मोहनलाल पहले कालबिन स्कूल के शिक्षक थे। मुरलीधर जब पढ़ते थे, तभी शिक्षक की हैसियत से मंत्र और मंत्रणा देते हुए यह शिष्य के बहुत नजदीक आ गए थे। इनका मतलब लक्ष्मी ही से सामीप्य और सायुज्य प्राप्त करना था, मुरलीधर को यह क्लास के पहले ही दिन में काठ का उल्लू समझते आ रहे हैं। माता के आंतरिक स्नेह के कारण, मुरलीधर को ज्ञान के सोपान तय करने का परिश्रम न करना पड़ता था, क्योंकि बालक के पिता को माता साधारण सूत्र-मात्र से समझा देती थी कि लाल को पेट के लाले नहीं पड़ने, जो फूल की कुल खुशबू स्कूल के आकाश में उड़ जाय, और वह किताबों की कड़ी धूप से मुरझाकर घर लौटे। बाबू मोहनलाल इस श्रुति के आधार पर फूल के बराबर खिले रहने की कोशिश करते रहे। मुरलीधर को प्रवेशिका तक तो हर साल बिना परिश्रम के फल-प्राप्ति होती रही, पर द्वार पर पहुँचकर अटक गए। मास्टर मोहनलाल के बढ़ावे से मेढ़े की तरह दो-तीन साल तक प्रवेशिका के द्वार पर ठोकरें मारीं, पर हताश होकर लौट आए। घर में मोहनलाल ने आकर कहा, लड़के की अक्ल तो बड़ी तेज है, पर परीक्षक लोग शराब पीकर परचे देखते है, जिससे अच्छे के लिये बुरा और बुरे के लिये अच्छा नतीजा हासिल हो जाता है। और, लड़के को

नौकरी तो करनी नहीं, जो कहें, बिना डिगरी के डग नहीं उठेंगे; यों इल्म के लिहाज से लड़का किसी ग्रेजुएट से कम नहीं। माता-पिता को तो ख़ुशी होती ही थी, मुरलीधर ने भी दृढ़ निश्चय किया कि उसकी प्रतिभा को अगर अब तक संसार में किसी ने समझा, तो एक मास्टर साहब ने। इसी निश्चय के आधार पर, पिता के स्वर्गवास के पश्चात्, अँगरेज अफ़सरों को तथा दूसरे मामलों में अँगरेज़ी में पत्र लिखने, बातचीत करने में दिक़्क़त पड़ने के कारण और ख़ास तौर से अपनी प्रभुता जताते रहने के उद्देश से मुरलीधर ने मास्टर साहब को याद किया, और यथेष्ट तनख़्वाह देकर अपने ही यहाँ रख लिया। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" का इतने दिनों बाद मास्टर साहब को प्रमाण मिला। अब शिष्य की उन्नति के लिये विशेष रूप से दत्त-चित्त हुए। कुछ दिनों तक शिष्य के मनोभावों को पढ़ते रहे। पढ़कर प्रौढ़ युवक को प्रौढ़ता की तरफ़ फेरने लगे। पहले छुरी, चम्मच, काँटे पकड़ाकर साहबी ठाट से भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्ख़ा रक्खा। फिर छिप-छिपाकर सरकारी अफ़सरों के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बग़ीचे की कोठी में बाक़ायदा पंचमकार-साधन और देशी-विलायती सरकारी अफ़सरों को क्रम-क्रम से निमंत्रण। एक साल के अंदर लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर आदि की ख़ूबसूरत-से-ख़ूबसूरत वेश्याएँ आकर, नाचकर, गाकर सरकारी

अधिकारियों को खुश कर-कर चली गई। दूसरे साल सम्राट् के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में स्टेट्समैन, पायनीयर, लीडर आदि में देखा, तो उन्हें पदवी नहीं मिली। पड़ोस के मामूली रियासतदार राजा हो गए हैं। अनुभवी मोहनलाल ने कहा, इस वर्ष तो अभी सिफ़ारिश गई ही होगी, साल-दो साल जब और मेहनत की जायगी, तब नतीजा हासिल होगा, ये ( विशेष-निकट-संबंध से सूचित कर ) सरकारी अफ़सर एक दिन में नहीं पिघलते; जानते हैं, माल भरा है, सोचते हैं, चार दिन की दावत से राजा बनकर बेवक़ूफ़ बनाना चाहता है; इसलिये घबराने की कोई बात नहीं; अपने पास माल है, तो नाम जरूर होगा।

मुरलीधर को धैर्य हुआ। इससे पहले की दावतों में सुंदरी-से-सुंदरी वेश्याओं के क़दम-शरीफ़ फिर चुके थे। फिर उनकी ओर सेकेंड हैंड किताबें ख़रीदने की तरह अपना ही मन नहीं मुड़ता, फिर निमंत्रित व्यक्ति कैसे खुश होंगे। यह शंका भी मोहनलाल ने की, और समाधान भी उन्होंने किया। कहा, अब दावतों का रुख बदल देना है। अब गाने के लिये तो मशहूर विद्याधरी, राजेश्वरी-जैसी रंडियाँ बुलाई जायँ, और ( इशारे से समझाकर ) गृहस्थों के घर की; बहुत मिलेंगी, एक-से-एक ख़ूबसूरत पड़ी हैं, रुपया चाहिए; अपने पास इसकी कमी नहीं।

कल्पना के हवाई जहाज पर चढ़े हुए मुरलीधर की तेज़

हवा के भीतर की स्थिति पार हो गई, और अपना स्थान सुखमय निकट देख पड़ने लगा। मास्टर साहब को भी कुछ दिन और हिसाब में अपने लिये काफ़ी निकासी कर लेने का मौक़ा मिला। उन्होंने इसके लिये पहले से अपने खास आदमी रक्खे थे, जिन पर उन्हें पूरा विश्वास था। दारिद्र्य का भार न सह सकनेवाली या कुलटा या लोभ से बिगड़ी हुई अथवा कुटनियों से बिगाड़ी हुई गृहस्थों के घर की सुंदरी-से-सुंदरी स्त्रियाँ मिलने लगीं। वात्स्यायन के समय से पहले भी, शायद सृष्टि के प्रारंभ से ही, मिलती थीं। मुरलीधर के रस की रास-लीला ऐश्वर्य की शुभ्र शारद ज्योत्स्ना में सारंगी में सप्त स्वरों, नूपुर-निक्कणों और नेत्र-वीक्षणों से मधुमय क्षण-क्षण मर्त्य को लोगों की चिर-कामना के स्वर्ग में बदलने लगी।

इलाक़े के, विशेष-रूप मुरलीधर के, नज़दीक रहनेवाले प्रिय पात्र, मोहनलाल के लाड़ले, शागिर्द, कर्मचारी, ज़िलेदार ज़माने का रंग खूब पहचानते थे। इनके द्वारा भी दूसरों की दाराएँ कभी-कभी ज़मींदार का द्वार देख जाती थीं। पहले शहर के गृहस्थों से, जहाँ शौक़ीन शाह वाजिदअली का आदर्श है, रुपए के बदले रूप लिया जाता रहा। पर यह प्रथा गाँवों तक फैली हुई है, प्रमाण मिलने पर देहाती ख़ूबसूरती पर ध्यान ज़्यादा गया। देहाती रूपसियों की निर्दोषिता साहबों को पसंद आई। इसलिये धीरे-धीरे गाँवों पर धावे होने लगे। देहात

की सुंदरी विधवाएँ, भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतियाँ एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थीं, और अपना ख़र्च नहीं चला सकती थीं, और इस तरह के लब्ध अर्थ से लड़की का धोके से ब्याह कर देना चाहती थीं, लगान की छूट, माफ़ी आदि पाने की ग़रज़ में, कुटनियों के बहकावे में आकर, चली जाती या भेज दी जाती थीं। लौट आने पर, किसी रिश्तेदारी की जगह जानेवाले कारण गढ़ लिए जाते थे। ज़मींदार के लोग स्वयं सहायक रहते थे, कोई डरवाली बात न होने पाती थी। विश्वासी ज़िलेदार इस तरह के मामलों में सूराख़ लगानेवाले, सौदा तय करनेवाले थे।

एक दिन महादेवप्रसाद एक ज़िलेदार ने ख़बर दी कि उसके गाँव में शोभा नाम की एक पंद्रह-सोलह साल की लड़की है। वह धूप से भी गोरी और फूल से भी ख़ूबसूरत है। आँखें बड़ी-बड़ी, आम की फाँक-जैसी, पढ़ी-लिखी, जैसे सुबह की किरन आसमान से उतरी हो। शादी हो चुकी है, पर अभी ससुराल का मुँह नहीं देखा। उसे तोलने के लिए एक दिन एक कुटनी भेजी गई थी। वह मनहारिन है। कुछ फ़ासले पर एक दूसरे गाँव में रहती है। उसने एकांत पा एक रोज़ बड़े-बड़े लोभ दिए कि एक तुम्हारे चाहनेवाले हैं, वह राजा से भी बढ़कर धनी और कृष्णजी से भी ख़ूबसूरत-गोरे हैं और तुम्हारे लिये बेचैन हैं।

"नाम तो नहीं बतलाया ?" मोहनलाल ने छूटते ही पूछा।

"नहीं साहब, मैं ऐसा बेवक़ूफ़ हूँ, जो नाम भी कहने के लिये कह देता।"

"हाँ, फिर ?"

"फिर उसके पर किसी तरह काँपे में न फँसे। गालियाँ देकर मनहारिन को निकाल बाहर कर दिया, लेकिन ईश्वर की मार भी एक होती है। मैं उस रोज़ से रोज़ महादेवजी को जल चढ़ाकर मनाने लगा कि हे बाबा, यह किसी तरह मिल जाय, तो आपके लिये एक चबूतरा पक्का बनवा दूँ। आप देवों के देव हैं, आपने देवीजी का मनोरथ पूरा किया था, मेरा भी पूरा करें। फिर सरकार चलने लगा महादेवजी का त्रिशूल, यही जो बीमारी फैल रही है—"

"इन्फ्ल्युएंज़ा ?"

"हुज़ूर, इसी इन्फ्ल्युएंज़ा में उसका बाप मरा, फिर मा मरी, गाँव के सैकड़ों आदमी—बसंतलाल, रामलोचन, लछमनसिंह, अंबालाल, बनवारीपरशाद, रामगोपाल, कृष्णा-कांत वग़ैरह मशहूर जितने मालदार थे, क़रीब-क़रीब सब साफ़ हो गए। कोई किसी के पास नहीं खड़ा होता। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। यह हुज़ूर यहाँ भी देख रहे हैं। जब उस लड़की के मा-बाप कूच कर गए, तब मैंने सोचा, अब इसे इंत-ज़ाम के साथ अपने क़ब्ज़े में करना चाहिए। वहीं प्यारेलाल के मकान में रखवा दिया है, और कह दिया है कि उसकी ससुराल ख़बर भेजी जाती है। उसने ससुराल का पता भी बता दिया है।

उसका खाविंद परदेश में, बंबई में, कहीं पढ़ता है। प्यारेलाल अपना ही आदमी है, ब्राह्मण है औरत-बच्चेवाला। लोगों को शक नहीं हो सकता। अब जब हुजूर की राय हो, ले आई जाय। सरकार जब तक उसे देखते नहीं, तभी तक दिल को तसल्ली दें, वरना मैं तो कहूँगा, हुजूर की नेक नजर में ऐसी खूबसूरत औरत पड़ी न होगी। ईश्वर की मर्जी, उसे मामूली ब्राह्मण के यहाँ पैदा किया, नहीं तो है वह महलों-लायक सरकार!"

प्रसन्न होकर मुरलीधर ने पूछा· "क्या नाम बताया?"

"शोभा, हुजूर!"

मुरलीधर सोचते रहे—एक साधारण स्त्री है। मर्जी के खिलाफ भी वह लाई जा सकती है। सब सरकारी कर्मचारी उन्हीं की तरफ हैं। विपक्ष से शिकायत करनेवाला कोई नहीं। वह न हो यहीं रख ली जायगी।

मोहनलाल बोल उठे, परसों सरकार के जंग फतह करने की खुशी में जलसा है। एक खास अफसर के निमंत्रण की बात कही। कहा—"बनारस की सुहागभरी और नियामतउल्लाखाँ, मुंशीजी, अलीमुहम्मद और भैरवप्रसाद वग़ैरह उस्ताद भी आवेंगे; अगर यह भी आ जाय, तो कोई बाज़ कमजोर न रहेगा।"

"लेकिन उसका दिल अभी दुखा हुआ है।" महादेव ने कहा।

"तो यहाँ जहर न दिया जायगा।" लापरवाही से मुरलीधर ने कहा।

---

( ३ )

देवी-दर्शन के पश्चात् रास्ते पर किशोरी को खड़ी कर वासुदेव बाबा को प्रणाम करने को बगीचे में पैठने से पहले शोभा ने समझा दिया कि क्वाँरी लड़कियों को देवी समझकर वासुदेव बाबा उनसे प्रणाम नहीं लेते, वह कुछ देर प्रतीक्षा करे, शोभा जल्द आ जायगी। किशोरी ने कुछ देर तक तो प्रतीक्षा की, पर डरकर फिर पुकारने लगी। उत्तर न मिला, तो रोती हुई घर गई। सुनकर उसकी मा के होश उड़ गए। वह डेरे की तरफ़ दौड़ी। प्यारेलाल वहीं था। महादेव धीरे-धीरे मोटर बढ़ाकर डेरे ले आने के लिये गाँव के बाहर गया था। प्यारेलाल के देवता कूच कर गए, जब सुना, शोभा वासुदेव बाबा के दर्शन करने गई थी, तब से ग़ायब है। दौड़ा हुआ बगीचे की तरफ़ कुछ दूर तक गया, पर कहीं कुछ न देखकर लौट आया। शंका हुई, पीपल के पासवाले कुएँ में न गिर गई हो। कुछ देर तक कुएँ की तलाशी होती रही। गाँव के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गए। कई रस्से बाँधकर कुएँ में पैठे। पर वहाँ भी शोभा न थी। फिर कुछ दूर तक बगीचे में गए, पर अँधेरे के सिवा कुछ न देख पड़ा। कोई भी शोभा को देखनेवाला गवाह न था। सब-के-सब सर हिलाने लगे। लोगों ने निश्चय किया कि किसी के साथ वह निकल गई।

जब तक गाँव के भीतर शोभा की तलाश और उसके बुरे चरित्र की चर्चा हो रही थी, तब तक गाँव छोड़कर वह बहुत दूर निकल गई। पहले ही जितना फ़ासला कर ले, इस विचार से, खबर होने तक, बग़ीचों की श्रेणी पार कर गई। पहले डरे हुए पैर तेज़ उठने लगे। शंका, भय, उद्वेग और दुःखों को उसकी एक अलक्ष्य शक्ति लड़कर पार कर जाना चाहती है। मुक्ति की प्रबल इच्छा सामने के विघ्नों को पीछे के पतन के भय से झेल रही है। कभी रास्ता नहीं चली। आज एक ही साथ जीवन का सबसे जटिल, दुर्गम मार्ग तय करना पड़ा। कटी घास की पैनी नोकों से तलवे छलनी हो रहे हैं, ख़ून के फ़व्वारे छूट रहे हैं, पर रास्ता पार करना है, याद आते ही कितना बल मिल रहा है! अंकुरों के चुभने की पीड़ा एक निःशब्द आह से भर जाती है। केवल एक लगन—रास्ता पूरा करना है, पकड़ न ले। वह रास्ता कितना लंबा है, वह स्टेशन कितनी दूर है, जानकर भी नहीं जानती, सब भूल गई, केवल इतना ही होश कि रास्ता पार करना है। उसे किस-किस तरफ़ से होकर कहाँ-कहाँ जाना होगा, कितनी दूर एक घंटे में चली आई, वह कच्ची सड़क कहाँ है, कुछ ज्ञान नहीं। ज़रा रुकने पर पैर की खील निकालने के क्षण-मात्र में काँप उठती कि पकड़ ली गई, पीछे कोई आ रहा है! हृदय धड़क उठता, वेदना भूलकर लंबे पग सामने बढ़ती जाती है। एक घंटा हो गया, जहाँ तक अँधेरा मिलता है, पेड़ देख पड़ते हैं, उसी तरफ़ जाती है। एक, दो, तीन

कई घंटे पार हो गए। साथ-साथ श्रांति बढ़ गई। गला सूख गया। दर्द भीगा, पैर दुखने लगे, बेताब हो वहीं बैठ गई। वह स्टेशन कहाँ है? वह कहाँ आई? कल क्या होगा? सोचती-सोचती पीड़ा की गोद में मूर्च्छित हो गई। जब आँखें खुलीं, तब न वह स्थान है, न वह दृश्य। फेन-शुभ्र मसृण शय्या पर लेटी; एक अपरिचित स्त्री पंखा झलती हुई, सर पर सुगंध से वासित पट्टी, तलवों में रुई के फाहे बँधे हुए।

जब महादेव लौटकर आया, और उसे मालूम हुआ कि शोभा गायब हो गई है, तो बहुत घबराया। लोगों को एकत्र कर शोभा को बचाने का धार्मिक उद्देश समझाकर मदद माँगी, और लोगों के तैयार होने पर, रात ही को तीन-तीन, चार-चार कोस के फासले तक के गाँवों में, मा-बाप की मृत्यु से घबराकर या किसी बहकानेवाले के साथ भगने की उसकी खबर फैला देने और वहाँ के लोगों से प्रार्थना करने के लिये कहा कि अपनी शक्ति-भर सब लोग उसकी सतीत्व-रक्षा का प्रबंध करें। लोगों को महादेव की सलाह बहुत पसंद आई। मदद के लिये गाँव के लोग तैयार हो गए। इधर उसने कहा कि मालिकों के यहाँ भी यह खबर हो जानी चाहिए। मुमकिन है, वहाँ से भी कोई मदद मिल जाय, और प्यारेलाल का एक रपोट लिखकर रात ही को चौकी के मुंशी को दे देने और सुबह कानपुरवाली गाड़ी से कानपुर तक स्टेशन देखते जाने के लिये कहा। एक दूसरे सिपाही को बादवाली

गाड़ी से होकर प्रयाग तक देख आने के लिये कहा. यदि शोभा किसी के साथ रेल पर सवार हो। खुद सदर मुरलीधर के पास खबर देने को गया, क्योंकि वह इंतजार करते रहेंगे। मुमकिन, कोई दूसरा बंदोबस्त आए हुए साहब के लिये करना पड़े।

पड़ोस के और फ़ासले तक ज़्यादातर गाँव मुरलीधर के ही थे। रातोरात तीन-तीन, चार-चार कोस तक गाँवों में ख़बर देने के लिये लोग दौड़े। चारो ओर सन्नाटा छा गया। राधा का पति डरा। दूसरे दिन उसका कानपुर जाना न हुआ। लोगों में तरह-तरह की टिप्पणियाँ चलने लगीं। प्रायः सभी शोभा के खिलाफ़—अबला प्रबल रूप धारण करने पर क्या नहीं कर सकती!

पंडित स्नेहशंकरजी सात-आठ गाँवों के मामूली ज़मींदार हैं। ऊँचे दरजे के शिक्षित। विदेशों का भ्रमण कर चुके हैं। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने पर भी ऊँचे पदों की प्राप्ति स्वेच्छा से नहीं की। सरस्वती की सेवा मे दत्तचित्त रहते है। उम्र पचास के उधर होगी, साठ के इधर। लंबे, पुष्ट, गोरे, ऋषियों के अनुयायी, इसलिये ईश्वर-प्रदत्त बोओं पर नाई का उस्तरा नहीं फिरता। सर के बाल, मूछें, दाढ़ी, यथा संस्कार प्रतिभा और प्रौढ़ता के अनुरूप। सदा प्रसन्न आँखों से गंगा के जल की-सी निर्मल ज्योति निकलती हुई। ज्ञान के उस उभय धारा में देश के आदर्श युवक स्नान कर धन्य होने के लिये आते

हैं, जमींदारी में रियाया के साथ रियायत का पूरा संबंध। अर्थ की ईंटों और शिक्षा के चूने से उठी ग्राम-संगठन की सुदृढ़, सुंदर इमारत प्रांत के उन्नतमना मनुष्य कभी-कभी देखने के लिये आते हैं। कभी-कभी सरकार से भी कुछ सहायता मिल जाती है। मुरलीधर के गाँव की अपार क्षार-जल-राशि के भीतर एक छोटे-से द्वीप की तरह सुजला-सुफला, शस्य-श्यामला, ज्ञान-दात्री, धात्री इतनी-सी भूमि। चारो ओर बिना सहारे की नाव के, अपने पैर पार होने की गुंजायश नहीं। जल-जंतुओं, डुबा देनेवाली उत्तुंग तरंगों तथा तूफ़ान का सदा भय। स्नेहशंकरजी गाँवों के जमींदार की तरह नहीं, रियाया की तरह रहते हैं। जमींदारी का प्रबंध वहीं के किसानों की एक कमेटी करती है। अपनी पुस्तकों की आमदनी से भी वह कभी-कभी किसानों के शिक्षा-विभाग की मदद करते हैं।

नियमानुसार वह ब्राह्म मुहूर्त में उठकर टहलने चले। कुछ दूर जाने पर तारों के प्रकाश में देखा, एक स्त्री बाग़ की खाई से कुछ फ़ासले पर पड़ी सो रही है, नज़दीक जाकर देखा, हरसिंगार के दो-चार फूल खुल-खुलकर उस पर गिरे हुए हैं, अच्छी तरह देखा, साँस चल रही है, नाड़ी बहुत ही क्षीण। मुख पर दिव्य सौंदर्य की स्वर्गीय छटा, जैसे साक्षात् गायत्री युग-शाप को सहन न कर विश्व-ब्रह्म की गोद पर मूर्च्छित पड़ी हुई हो। स्नेहशंकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उस किशोरी पर करते-करते शीघ्र घर लौटे। अपने पुत्र अंबिका-

दत्त और पुत्र-वधू सावित्री को शयन-गृह के द्वार पर पुकारा। दोनो सो रहे थे। जगकर ससंकोच दोनो बाहर आए। संक्षेप में समाचार सुना, स्नेहशंकरजी ने उठा लाने को दोनों से कहा। दोनो पिता के पश्चाद्वर्ती हुए। शोभा की प्रांजल, करुण, मूर्च्छित शोभा देखकर सावित्री रोने लगी। संभालकर दोनो घर उठा लाए। अपने बिस्तरे पर लिटा, फाहे से तलवों का खून धोकर, आइडिन लगा, ढीले बाँध दिया, सर पर गुलाब की पट्टी रखकर सावित्री पंखा झलने लगी।

प्रभात हुआ। गाँव के लोग जागे। ऊषा की लालिमा के साथ शोभा के भी सरोज-दृग अँधेरी क्लांति के भीतर से बाहर के जाग्रत् संसार में खुल गए। निश्चल चितवन से अपरिचिता सुंदरी सेविका को देखा, पर नेत्र अव्यक्त शंका से नीहार के कमल-जैसे व्याकुल हो गए, जैसे संसार में विश्वास-पात्र अब कोई नहीं रहा, जैसे इस सेवा में भी स्वार्थ छिपा हो।

सावित्री प्रश्न न कर चुपचाप अपने पति के पास गई, और पिताजी को बाहर से बुला लाने को कहा। कहा, अब होश हुआ है।

स्नेहशंकरजी शीघ्र आए, और स्नेह से अभय दिया। कुल शंका-संकोच दूरकर, कहने लायक़ हालत हो, तो हाल बयान करने के लिये कहा।

गल-गलकर पलकों के करारों से युगपद् आँसुओं की धारा बहने लगी। स्नेहशंकर के हृदय के स्नेह की पहचान पा शोभा

करुण चितवन से देखकर रह गई, कुछ कह न सकी। इस अव्यक्त कथा के इतने व्यक्त प्रकाश से स्नेहशंकर बीज-रूप अर्थ समझ गए। उनकी वेदना के आँसू शोभा को सहानुभूति-प्रदर्शन के लिये गुप्त पथ पार कर बाहर आ गए। फिर सँभलकर उन्होंने कहा—"अच्छा, कुछ स्वस्थ हो लो, कुछ खा-पी लो, तब कहना।"

दुःख-भरी पुकार से करुण शोभा का पत्र विजय की दृष्टि-किरणों में ठीक ऊषःकाल की ओस के आँसुओं का तरु-पल्लव हुआ, शिशिर का शतपत्र। पर दूरतम पथ पार करने को पाथेय कुछ नहीं। पींजड़े में आशु-बंदी पक्षी के सदृश हृदय देह के भीतर तड़फड़ाने लगा, पर पतत्रि को पुनः-पुनः घातों के सिवा उड़ने का पथ नहीं मिला। सेठजी, जिनके प्रसाद से वह किसी तरह बंबई में रहकर रही एक साल की पढ़ाई पूरी कर लेना चाहता है, नाराज़ हैं। अब सहायता देने से उन्होंने इनकार कर दिया है। पुलिस के गुप्त विभाग के किसी अफसर से उनके पास उसके नाम शिकायत पहुँची है। इन्हीं सेठजी के यहाँ उसके पिता ईमानदारी से तीस वर्ष तक कार्य करके वृद्ध हो घर गए, इन्हीं सेठजी को तीन बार मवालियों के आक्रमण से मैदान में टहलते समय साथ रहकर उसने बचाया था, इन्हीं सेठजी के घर से, पुलिस की सलाह के अनुसार, राजनीतिक कवल से जूठी पत्तल की तरह, वह बाहर निकाल दिया गया। पर उसका मानसिक स्वातंत्र्य सामयिक बादलों में सूर्य की तरह ढका है। सेठजी से प्रार्थना करने के लिये फिर गया। पर ड्योढ़ी से भीतर पैठ नहीं हुई। दरबान ने कहा,

ड्योढ़ी बंद है। दो लड़कों को पढ़ाने लगा था, अभी महीना पूरा नहीं हुआ। उनके अभिभावकों के पास गया। दोनो जगह एक ही-से उत्तर—"बग़ैर महीना पूरा हुए आपको कैसे रुपए दे दिए जायँ—ऐसी उतावली हो, तो आप अगले महीने से मत पढ़ाइए, हम दूसरा इंतज़ाम कर लेंगे।"

विजय—"तो अब तक का जो होता हो, कृपा कर वही दे दीजिए, फिर मैं न आऊँगा, मेरे घर में बीमारी है, घर जाना चाहता हूँ।"

"अच्छा, यह बात है, अब आप नहीं आना चाहते, कोई दूसरा काम मिला होगा, ख़ैर, रुपए नहीं हैं। हमारे यहाँ पंद्रह-पंद्रह, सोलह-सोलह दिन में तनख़्वाह नहीं दी जाती।"

विजय फिर कुछ कहने चला, तो दरबान की पुकार हुई, और तृतीय पुरुष के परुष संबोधन से कहा गया, इसे निकाल दो।

पहली जगह तो अपमान को पीकर किसी तरह दिल को उसने समझा लिया, पर दूसरी जगह धैर्य न रहा। दरबान के आने के साथ तौलकर ऐसा एक हाथ रक्खा कि वह मुँह के बल आया। फिर विद्यार्थी के पिता की तरफ़ चला, तो वह जेब में हाथ डालकर जो कुछ बचाव के लिये निकला, सभय देने लगे। नोट थे। विजय की आँख चढ़ी थी। नोट लेकर सदर्प, सक्रोध गद्दी से बाहर निकल गया। दूर सड़क पर जाकर देखा, छ दस रुपए के और एक सौ रुपए का नोट। क्रोध के बाद धनी-स्वभाव की परीक्षा कर हँसी आ गई। यह क्रोध

और बल है, जिसे तीन महीने की पढ़ाई से अधिक अर्थ मिलता है, वह सौजन्य और शिष्टता है, जिसकी गर्दन पर हाथ जाता है। ऐसा है आज भारत—सोचता हुआ अपने डेरे की तरफ़ चला। भाड़ा आदि चुका, बिस्तरा बाँधकर सीधे स्टेशन पहुँचा। फिर टिकट लेकर डाकगाड़ी से ससुराल के लिये रवाना हो गया।

बातों से शोभा की पहचान कर स्नेहशंकर, उनके पुत्र और पुत्र-वधू ने गृह की कली में उसे सौरभ की तरह छिपा रक्खा। शत-पथ-वाहिनी शतद्रू जैसे पर्वत-पिता के वक्षःस्थल में मूलवास अंतर्हित कर रही। जो जन-रव फैला था, इस परिवार को परिचय के दूसरे ही दिन मालूम हुआ, और तत्त्वज्ञ दार्शनिक पुरातत्त्ववेत्ता स्नेहशंकर को शोभा के सत्य के साथ जनता के सत्य का एक दृष्ट प्रमाण मिला।

अच्छी हो, स्नान समाप्त कर, बाल खोले दिन में शिशिर की स्नात ज्योत्स्ना-रात-सी स्निग्ध, शुभ्र-वसना, सुकेशा शोभा उदार, अपलक दृष्टि से न-जाने क्या मन-ही-मन देख रही थी, किसी दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्त दृष्टि; ऐसे समय एक बार फिर इस गायत्री को, विद्या ही-सी चमकती, जल-जड़ से उभड़कर आई चिन्मयी मूर्ति को सस्नेह स्नेहशंकर ने देखा—मुख की प्रभा तथा सघन केशों के अंधकार में दिन और रात का द्वियार्थ रूपक। याद कर सहास्य कहा—"अलका है यह।"

सावित्री खड़ी थी। पिता की कविता सुन मुस्कराकर पूछा—"अलका क्या पिता?"

"इसका नाम है, यही नाम लोगों से बतलाना, और जैसा

अब तक कहा है, मेरी बहन है। खूब याद रखना, भूलना मत।"

"हाँ, ठीक है।"

नारियल के जल की तरह प्रसन्न, विश्वामित्र के वर से मनुष्यरूप, विद्या और बुद्धि के कठोर आवरण के भीतर, छिपा दिया गया। स्नेह का ऐसा प्रगाढ़ लेप होता है कि जीव को तृप्ति मिलने के कारण जीवन दुःखप्रद, भार-सा नहीं मालूम होता, बल्कि इस मायिक बंधन में कायिक आनुकूल्य पा प्रतिमा प्रसन्न चमकती है। अलका पितृपक्ष के दृश्य अपनी ही आँखों अनादि काल में अवसित होते देख चुकी थी। उसके चिर-स्नेह के अभ्यस्त आश्रय पिता-माता को एक अलक्ष्य शक्ति ने मूर्तियों से पुनश्च अणु-परमाणुओं में चूर्ण कर दिया था। अब दूसरे शक्ति-चक्र से घूर्णित, विशेष कष्टों के बाद, एक दूसरा स्नेहमय, मधुर माया-संसार संगठित हो गया है। उसे पूर्वार्जित नष्ट स्नेह-प्रतिमाओं का दुःख तो है, पर संतप्त हृदय को अनेक प्रकार से स्नेह-समीर भी स्पर्श कर ताप हर जाती है, इसका भी सुख उसे मिलता है। सावित्री एक ऐसी बहन उसे मिली, जैसी पिता के गृह में दूसरी न थी। बंबई से तार का जवाब आया है, उसका पति अब वहाँ नहीं; बहुत संभव, वह घर गया हो। उसके दूसरे धर्मपिता स्नेहशंकर अपनी पूरी शक्ति से उसके हितों को देखते हैं। बंबई में उनके मित्र और विशेषता से उसके पति का पता लगा रहे हैं। अलका इन्हीं भावनाओं की मूर्ति बनी खड़ी थी।

"इनकी ससुराल का कुछ पता मिला पिता ?" सावित्री ने साग्रह पूछा।

"हाँ, जो हाल पिता के गृह का, वही श्वशुर-गृह का भी।" स्नेहशंकरजी स्तब्ध बैठे रहे।

"तो क्या—"

"हाँ, कोई नहीं; विजय के पिता, माता, भाई, सभी स्वर्ग सिधार गए। विजय हैं, पर पता नहीं चल रहा। अलका को मानसिक बहुत ही दुःख है, पर निरुपाय दुःखों को सहना ही पड़ता है। हम लोग परसों लखनऊ चलेंगे। वहाँ इसका जी कुछ बहल सकता है। हमने ससुराल का हाल छिपा रखना अनुचित समझा। अभी इसे कष्ट है। पर जब हम भी अपने परिवार तथा स्नेह में सम्मिलित समझेंगे, तब ऐसा मनोभाव न रहेगा। इसी भारत में आश्रय-हीन बालिका और तरुणी विधवाएँ भी हैं। उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म का भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिर-संचित सतीत्व-धन से भी हाथ धोती हैं। इस घोर सामाजिक अंधकार में पथ-परिचय का बहुत कुछ प्रकाश पा अलका को कदापि खिन्न नहीं होना चाहिए। हम कहते हैं, आगे यह खेद न रहेगा। ज्ञान की शांति में दुःख की सब ज्वाला बुझ जायगी। वह अपनी बहनों के लिये प्रदर्शिका होकर बहुत कुछ कर सकती है। क्यों अलका ?"

"जैसी आपकी आज्ञा।" नत-करुण-नयना अलका ने धीमे स्वरों में कहा।

"भय क्या बेटी, दुःख मनुष्य ही झेलते हैं, तू महाशक्ति है। जितना परिचय शक्ति का तूने दिया, उससे अधिक की मृत्यु के सामने भी जरूरत नहीं। भरोसा रख। सदा समझ, भारत की दुःखी विधवाएँ, महिलाएँ तुझे चाहती हैं। अब तेरी उचित शिक्षा का प्रबंध करना है। तू देखेगी, किसी तरह की भी आशा से, उसकी पूर्ति से भी हृदय को ज्ञान-प्राप्ति के इतना आनंद नहीं मिलता।"

अलका पितृ-चरणों पर कोमल-नत-दृष्टि खड़ी रही। सावित्री ने लौंग लाकर दी।

"यह कौन है, जानती है?"

अलका ने प्रश्न की पद्म-दृष्टि से देखा।

"मुझे क्या, अपने चिरंजीव पुत्र-रत्न को कहिए। बहारने की जरूरत पर मैं ख़ुद झाड़ू लगा लेती हूँ, उन्हें नहीं पकड़ाती, ग़नीमत कहिए।" चपल-चितवन पिता को देखती हुई प्रखर सावित्री कह गई।

अलका नहीं समझी, ऐसी निगाह से पिता को देखा।

"समय आने पर सावित्री ख़ुद तुझे समझा देगी, अभी नहीं।" इतना कह, न-जाने कितनी दूर, चिर-कांक्षित चिराभ्यस्त यत्न-कल्पित ज्योतिर्मय लोक में स्नेहशंकरजी दृष्टि बाँधकर रह गए। सावित्री पिता के मनोभावों से परिचित थी। एक अर्थ आप ही सोचकर मुस्किराती रही।

"देश तैयार नहीं," स्नेहशंकरजी ने सचिंत-शांति-पूर्वक कहा।

"जी।" सावित्री ने आँखें झुका लीं।

"कार्यकर्ता जो कुछ भी प्रभात के विरल तारों-से देख पड़ते हैं, योरप के मरुस्थल की ओर बढ़ रहे हैं, और उद्देश जल का लिए हुए, पर नहीं समझते, यह एक दूसरे की प्राकृत ज्वाला से जला हुआ प्रकृति की नक़ल है! यहाँ के नख़लिस्तान के केलों के जल से तमाम देश की प्यास न बुझेगी।"

"जी।"

"इसीलिये लोगों को समृद्ध करने के उपाय छोड़कर स्वयं प्रसिद्ध होने को तत्पर होते हैं। इस तरह जिस समूह को वे स्वतंत्र करना चाहते हैं, उसे ही अपनी आज्ञाओं का अनुवर्ती, गुलाम करने के फेर में पड़ जाते हैं। इससे बड़ा मनुष्य-मस्तिष्क का दूसरा अपकार नहीं।"

"आपके क्या विचार हैं?"

"जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ, तुम्हारे पति के साथ किया। जनाभाव के कारण अपनी भावनाओं का अनुरूप विस्तार नहीं कर सका। पर इच्छा है। साहित्य में इसीलिये इन विचारों की पुष्टि करता हूँ। यदि किसी प्रबल शिला के कारण प्रवाह का पथ-रोध हो रहा हो, तो शिला के हटाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। प्रवाह स्वयं स्वतंत्र है। वह अपनी गति निश्चित, निर्धारित करता हुआ ठीक अतल-अपार समुद्र से मिलेगा। रास्ते में नदी-नदों का सहयोग भी उसे आप प्राप्त होगा। पर जो प्रवाह शोण के साथ सहयोग कर वंगोपसागर से मिलना चाहता

है. उसे अरब-समुद्र में गिराने का प्रयत्न केवल कारीगरी की प्रशस्ति-प्राप्ति के लिये है, यह उसकी सुविधा न की गई।'

"आपका मतलब मैं नहीं समझी।" एकाग्र हो सावित्री पिता की ओर देखने लगी।

"बात यह कि देश की स्वतंत्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं। मान लो, एक मशीन बनाने की जरूरत हुई, तो क़ानून का जानकार क्या कर सकता है? मनुष्य के जीवन को, एक साधारण-से-साधारण गृहस्थ को जैसे निर्वाह के लिये आवश्यक छोटी-मोटी सभी बातों का ज्ञान रखना पड़ता है, वह खेती का हाल भी जानता है, बाग़बानी भी जानता है, कुछ कल-पुरजों का ज्ञान भी रखता है, पशु-पालन से भी परिचित है, और सीना-पिरोना, पाक-शास्त्र, वैद्यक, शिशु-रक्षा, पत्र-लेखन, पुस्तक-पाठ, साहित्य, दर्शन, समाज और राजनीति के भी यथावश्यक क़ानून जानता है, और इस प्रकार एक मिश्र ज्ञान उसकी व्यावहारिक गृह-स्वतंत्रता का अवलंब है, वैसे ही देश की व्यापक स्वतंत्रता को सब तरफ़ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान-पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतंत्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नहीं हो रहा। हमारे यहाँ तो क़ानून के बल पर राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की जा रही है। संवाद-पत्रों में क़ानून के जानकारों का विज्ञापन होता है—वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"पिता, पर उनमें कैसे-कैसे त्यागी नर-रत्न हैं!"

"मैं अस्वीकार तो करता नहीं। पर क्या दूसरी तरफ़ भी ऐसे ही त्यागी और संयत मनुष्य नहीं? क्या देश उनकी भी वैसी ही इज्जत करता है? सावित्री, नहीं करता, इसका वही कारण है। यह मेरी अपनी बुद्धि, अपने विचार हैं। स्वतंत्रता के नाम से देश घोर परतंत्र है। संवाद पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक हैं। वे इस तरह अपने पत्र का भी प्रचार करते हैं। जिसे अभ्युदयशील, जनता में आकर्षक, लोक-प्रिय समझते हैं, बराबर उसी का प्रचार करते रहते हैं। जनता बड़ी असमर्थ होती है सावित्री। वह मनुष्य को बिना स्याह दाग का ईश्वर भी समझ लेती है। जो कमजोर को और भी कमज़ोर, परावलंबी कर देता है। संवाद-पत्रों में स्वतंत्रता का व्यवसाय होता है। संपादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गति नहीं जानते, अर्थात् उनके भीतर वैसी ही पोल भी है। वे दूसरे हाथों की थपकियों से मधुर बोलते हैं—जनता वाह-वाह करती है, और बजानेवाले देवता को पुष्प-माला लेकर यथाभ्यास, जैसा समझाया गया, पूजने को दौड़ती है। यह स्वतंत्रता का परिणाम नहीं।"

"पर नेता को सभी सम्मान देते हैं।"

"नेता? नेता कौन है? मनुष्य? एक मनुष्य सब विषयों की पूर्णता पा सकता है?"

"नः।"

'इसीलिये नेता मनुष्य नहीं, सभी विषयों की संकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है। इसीलिये किसी भी तरफ़ का भरा-पूरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ़ के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है। पर देश में यह बात नहीं हो रही। यही मैं कह रहा था। एक को पैत्रिक संपत्ति मिली। पिता जज थे। पूर्ण शिक्षा भी मिली, क्योंकि अब रुपए से शिक्षा का तअल्लुक़ है। वह इटली, जर्मनी, फ्रांस, इँगलैंड और अमेरिका आदि देशों से शिक्षोत्कीर्ण पदवियों के हीरा का हार पहनकर स्वदेश लौटे। बैरिस्टर हुए। दो करोड़ रुपया अर्जित किया। अंत में दस लाख देश को दान कर दिया। कोने-कोने तक नाम फैल गया। पत्र यशोगान करने लगे। वह देश के नेता हो गए। एक दूसरे को केवल बैल, हल और मूसल पैत्रिक चल संपत्ति मिली, और शिकमी जोत सिर्फ़ दस बीघे जमीन। वह हल और माची कंधे पर लादकर, एक पहर रात रहते, खेतों में जाता, शाम तक जोतता, दोपहर वहीं नहाकर भोजन करता, घंटे-भर छाँह में बैल चारा खाते, तब तक अपनी प्रिया से खेती की बातचीत करता है। शाम को काम कर घर लौटता है। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भर पेट खाने को पाता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता और फ़सल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी-कभी उन्हीं की कृपा से कचेहरी जा बैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमींदार, पुलिस, कचेहरी, समाज, सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की

पदवी से रहित, ठोकरें खानेवाला है। कोई देख न ले, और रोने का मतलब और-और न सोचे, इसलिये खुलकर नहीं रोता। एकांत में ईश्वर को पुकार, शून्य देख, दुःख के आँसू पीकर रह जाता है। तमाम उम्र इसने ऐसे ही पार की। छोटी-सी सीमा के बाहर कोई इसे नहीं पहचानता। सदा इसके सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य-रूप राक्षसों से मिले दुःखों का पहाड़ रक्खा हुआ है। यह इसे अपने ही कर्मों का फल समझ, किसी को भी इसके लिये न कोसकर, चुपचाप ढोता चला जा रहा है। इन दोनों में कौन बड़ा है सावित्री ?"

"यही किसान।"

"यह क्या चाहता है सावित्री ?"

"यह क्या चाहता है पिता ?"

झर-झर आँसुओं का अनर्गल प्रवाह सानुभव विद्वान् पंडित-प्रवर की आँखों से बहने लगा। ओस से आकाश के रोने के साथ-साथ, उसके स्नेहाच्छद की पत्रिका, अलका भी रोने लगी। सावित्री ने रात की ही तरह पलकें मूँद लीं, यह दृश्य न देखा।

सँभलकर स्नेहशंकरजी ने कहा—"चाहते और क्या हैं, न्याय, इस दुःख से मुक्ति। इसीलिये, जो लोग वास्तव में क्षेत्र पर उतरकर देश के लिये कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिये सोचें, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले में, जितने हों, उतने केंद्र कर अर्थात् उतने गाँवों में, इन किसानों को केवल प्रारंभिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेल-वास

से ज्यादा उपकार हो, और यह शिक्षा की सचाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या-वृद्धि कर दे। फिर वे भी इस कार्य में कार्यकर्ताओं को मदद करें। किसी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क में होता है। जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है? समझदार कभी भी समझ नहीं छोड़ता। ठीक-ठीक काम तभी होता है। मनुष्य-रूपों में जिनकी पशुओं की संज्ञा अज्ञान के कारण हो रही है, वे किसी विषय को अच्छी तरह जाने बिना ग्रहण नहीं कर सकते। कठिन समय आने पर उसे छोड़ देंगे।"

"लोग इस मनोभाव को न छोड़ें, इसीलिये तो नेता अनेक दुःख-कष्ट झेलते, तपस्या करते हैं।"

"मैं विरोध नहीं करता। पर, जैसा पहले उस किसान के लिये कहा है, वैसा ही फिर कहता हूँ, शक्ति की दृश्य क्रिया से अदृश्य क्रिया में और भी कष्ट मिलते हैं। तुम यह न सोचो कि जो मनुष्य दस-बीस वर्षों तक एकनिष्ठ हो किसानों की दो रोटियाँ खाकर उनके बच्चों को पढ़ाएगा, उसे किसी जेलवासी से कम दुःख उठाने पड़ेंगे। शक्ति के संयम में जितना दुःख, जितनी साधना है, उतना दुःख, उतनी साधना बेमेल शक्तियों की प्रतिक्रिया में नहीं। गीता में यही उपदेश है। ब्राह्मण इसीलिये क्षत्रिय से बड़ा है। जेल क्या बाहर नहीं? सरकारी जेलों की दृश्य दीवारों के बाहर ईश्वरीय जेलों के क़ैदी कम तकलीफ़ उठाते हैं? ऊँचे विचारों से वायु और आकाश की

दीवारें और मजबूत, और दुःखप्रद हैं। फिर एक ही पारतंत्र्य की दीवार जेल के भीतर भी है और बाहर भी। अर्जुन सशस्त्र है, प्रतिघात करते, मार का जवाब मार से देते हैं; कृष्ण निरस्त्र हैं, हाथ में घोड़ों की लगाम, लक्ष्य सदा आगे पर, शरीर का बिलकुल ज्ञान नहीं। पर दुःख कौन ज्यादा उठाता है? संयम किसमें अधिक है? उत्तरदायित्व किसका बड़ा है? उद्धार के लिये वही रास्ता अच्छा होता है, जहाँ रुकावट न हो। रस्सा खींचने (Tug of war) में बाद को एक ही पक्ष खींच लेता है, पर जब तक एक पक्ष की शक्ति समाप्त नहीं हो जाती, खींचनेवाले कितना हैरान होते हैं? देश की राजनीति की अभी ऐसी दशा नहीं कि बराबर का जोड़ हो; इसलिये सुधार की ही तरह सुधार करना चाहिए; नहीं तो हार अवश्य होगी। नेताओं के साथ अधिक संख्या में जनता सहयोग न करेगी। अपने अंगों में जो कमज़ोरियाँ हैं, उन्हें दूर कर क़िला मजबूत करने के काम में लगने पर, क़िले पर गोलाबारी होने की कोई शंका नहीं, अपरंतु साधना, कष्ट और महत्व भी जेल-सेवा से कम नहीं। जेल में व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है। जनता मुँह फैलाए संवाद-पत्रों में स्वतंत्रता की राह देखती है!"

अंबिकादत्त किसान-लड़कों को पढ़ाने, अपनी ही तैयार कराई पास की पाठशाला, गए थे। घर लौटे। गाँव का तमाम काम शिक्षा, गोपालन, कृषि, वस्त्र-निर्माण आदि इन्हीं के सिपुर्द है। कुछ और सिखाए हुए कार्यकर्ता हैं, जो वहीं रहते हैं।

कभी-कभी पं० स्नेहशंकरजी भी देखते हैं। पर इनका अधिक समय पुस्तक-प्रणयन में पार होता है।

पीछे-पीछे भोला चमार कुछ सूलियाँ व्यवहार में देने के लिये लेकर आया। टोकनी में रखकर सावित्री ने निकट ही बैठाला। भोला चमड़े का बाजार गिरने का हाल बतलाने लगा।

मन्ना पासी चौगड़े ३-४ शिकार कर लाया था। अंबिकादत्त मांस खाते थे। सावित्री को भी अरुचि न थी। सिर्फ़ स्नेहशंकरजी उत्तेजक समझकर न खाते थे। इन दोनों के लिये उन्होंने स्वयं राय दी थी। मन्ना एक सेर तक मांस महुए के पत्ते के दोने में ले आया, और द्वार पर सदर्प "भौजी, भौजी" की निर्भीक आवाज़ लगाई। सावित्री ने बुलाया। मन्ना ने भीतर आ भौजी के हाथ पर, हँसता हुआ, मांस का दोना रख दिया।

मांस की ओर देखकर शोभा ने ऐसी मुद्रा बनाई कि स्नेहशंकर समझ गए कि इसने मांस कभी खाया नहीं, इसलिये घृणा करती है। हँसकर पास बुला कहने लगे—"आज हमारा-तुम्हारा अलग चूल्हा दग जाय, हम तुम्हारे दल में हैं।"

"क्या दीदी खाती हैं?" खौफ़ की निगाह सावित्री को देखते हुए अलका ने पूछा।

"हाँ, रोज बाजार से बकरा आता था। तुम्हारे आने से

बंद था। अब फिर कहो, आज से श्रीगणेश हो। क्यों, दीदी से अब विशेष सहानुभूति नहीं रही ?" अलका कुछ क़दम पिता की ओर बढ़ गई—"मुझे डर लगता है।"

"स्नेहशंकर हँसने लगे।"

कानपुर की एक संकीर्ण गली के मकान में बैठा हुआ युवक आवाज़ पा बाहर आया, और मित्र को देखकर प्रसन्नता से लिपट गया—"तुम आ गए विजय ? आने का पत्र नहीं लिखा तुमने !" विजय को ले जाकर अपने कमरे में बैठाला, कुली ने उसका सामान रख दिया। विजय ने क़ुली की मजदूरी चुका दी। फिर एक साँस छोड़कर कहा—"बड़ी विपत्ति में हूँ अजित !"

"विपत्ति !" शंका की दृष्टि से अजित ने देखा।

विजय—"हाँ, मेरे मा-बाप, सास-ससुर, सबका इसी बीमारी में शरीरांत हो गया। मेरे पास ससुराल से एक पत्र आया था, लो पढ़ो।" विजय ने शोभा का पत्र पढ़ने को दिया। अजित पढ़ने लगा। पढ़कर साश्चर्य विजय को देखा। विजय फिर कहने लगा—"उसके गाँव से पता लगा है, वह किसी के साथ भग गई।"

अजित—"झूठ है। जिसके हाथ का ऐसा पत्र है, उसके मनोभाव वैसे नहीं हो सकते।"

विजय—"लेकिन पता नहीं लग रहा, क्यों गाँव से गई ? उस गाँव के जिलेदार, कहते हैं, उसके बड़े हितकारी थे। उनकी सूरत लेकिन एक खासे मक्कार की है।"

अजित—"बस-बस, यहीं कुछ रहस्य है।"

विजय—"लेकिन रहस्य का पता लगने-लगाने तक शोभा का सतीत्व तो नहीं रह सकता, जैसा समय है।"

अजित—"यह ठीक है। पर यह भी संभव है, कुछ दाल में काला देखकर उसने आत्महत्या कर ली हो, और पकड़ जाने के डर से गाँववाले छिपा रहे हों।"

कुछ देर तक दोनो संध्या के प्रांतर की तरह शून्य-जन, मौन बैठे रहे। विजय ने कहा—"क्या करता, लाचार घर चला। रास्ते में संवाद मिला, पिताजी और माताजी का भी देहांत हो गया है। छोटा भाई था, उसे भी सर्दी लग चुकी थी, दुःख-शोक और रोग से उसने भी प्राण छोड़ दिए। घर की रक़म ज़मींदार के हाथ लगी। अचल संपत्ति कुछ थी नहीं। फिर जाना-न जाना बराबर सोचकर यहाँ चला आया।"

अजित—"तो क्या विचार है अब?"

विजय—"जो एक मनुष्य का होना चाहिए। लेकिन न-जाने क्यों, कुछ दिनों से पुलिस पीछे लगी है। यहाँ रहूँगा, तो मुमकिन, तुम पर भी शक हो।"

अजित—"अरे, यहाँ तो छ महीने से ससुरजी की बेटी जवान है, रोज़ देखने आते हैं।"

विजय—"तब यही बात होगी, जो मुझ पर संदेह है। तुम्हारे पत्र कारण हैं।"

अजित—"लेकिन तुम्हें मैंने कोई ऐसी बात तो नहीं लिखी।"

विजय—"पत्र लिखा। संबंध है। शिकारी हो—राह-चलता, व्याघ्र को नू मिली।"

अजित—"बड़े भाग्य हैं जी, एक शरीर-रक्षक हमेशा साथ रहेगा।"

विजय हँसने लगा—"ये गुप्त विभागवाले बकरे चुन-चुनकर पौदों के सर काटकर खाते हैं—पत्ते नहीं, नए कोपलवाले डंठल। एक बार चर जाने पर फिर पौदा नहीं पनपता, धीरे-धीरे मुरझाता हुआ सूख ही जाता है।"

अजित ने विजय को बीड़ी दी। विजय ने इनकार किया। तब अपनी में आग लगा लापरवाही से कमरे को, धूमायमान कर पुकारा—"रामलोचन, ज़रा दो कप चाय तो बना लाओ।" फिर विजय से पूछा—"तो तुम अब क्या करना चाहते हो?"

विजय—"सोचा था, एम्० ए० कर लूँगा, पर भाग्य में ऐसा नहीं लिखा, और डिगरी करूँगा भी क्या लेकर?—नौकरी करनी नहीं, किताब पढ़कर समझने लायक़ लियाक़त हो ही गई है। ईश्वर ने रास्ता भी साफ़ कर दिया। अब तो तमाम भारतवर्ष अपना मकान है। उसी के लिये जो कुछ होगा, करूँगा।—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'" कहकर कुछ देर विजय चुपचाप बैठा रहा, फिर अजित से पूछा—"तुम क्या करोगे?"

अजित—"तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो, ऐसा जान

पढ़ता है। मुझे तो ईश्वर के नाम पर अँधेरे के सिवा और कुछ नहीं नजर आता। हालाँकि मैं डी० ए० वी स्कूल का पढ़ा हुआ हूँ। खैर, मैंने खराबी यह की कि पहले के परिचय के कारण ज्योतिःस्वरूप को अपने कमरे में टिका लिया। मैं नहीं जानता था कि ज्योतिःस्वरूप इस समय राजनीतिक अंधकार-पथ के यात्री हैं, इससे ख़ुफ़ियावाले हमेशा उन्हें राह बताने के लिये उनके साथ रहते हैं। नतीजा यह हुआ कि उनके जाने पर सरकार की राजभक्त रियाया की लिस्ट से, धर्म-भ्रष्ट हिंदू की तरह, मैं भी जाति-च्युत किया गया, अर्थात् सरकार के परिवार से मेरी लुटिया-थाली अलग कर दी गई। साथ-साथ पूरे सेर-भर मिर्च की झार से पिताजी के सामने मेरे नाम पर छींक-फटकार की गई। मैं बुलाया गया। पिताजी ने पूछा—'तुम्हारे पास ऐसे लोग क्यों आते हैं, जो सरकार के ख़िलाफ़ हैं?' मैंने कहा—'मुझे सरकार की ख़िलाफ़त का कुछ इल्म नहीं।' 'अबे गँवार, ख़िलाफ़त क्या कहता है, बी० ए० में पढ़ता है,' पिताजी गरज उठे। मैंने कहा—'आप अपने 'ख़िलाफ़' का नाउन (विशेष्य) समझ लीजिए, मैंने उर्दू की बर्दी नहीं पहनी।' 'तो उनसे क्यों मिलता-जुलता है, जो सरकार के ख़िलाफ़ हैं?' बड़े क्रोध से कहा। मैंने फिर ग़लती की, लेकिन भाव की नहीं, कहा—'तो क्या वे सरकार की ख़िलाफ़त का तमग़ा लटकाए फिरते हैं?' 'इसका कुछ जवाब न देकर मुझे घर से निकाल दिया। बड़े शिव-भक्त हैं। पर अक़्ल ऐसी!

बताओ, वह शिवजी के बैल या शीतलादेवी के शिष्ट वाहन से भी बढ़कर विशेषता रखते हैं या नहीं। इसलिये 'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः' तो यहीं तक समझो। माताजी फल्गु की तरह पिताजी के अज्ञात भाव से भीतर-ही-भीतर अर्थ-जल भेजवा देती हैं, किसी तरह बी० ए० पास कर लिया है, अब उन्हें भी तकलीफ़ नहीं देना चाहता। सोचता हूँ, जिनमें बदनाम हूँ, उन्हीं में मिल जाऊँ, जो होगा, होगा। लेकिन मुझे तो इसका कुछ पता भी नहीं मालूम। ज्योतिःस्वरूप को छोड़कर दूसरे को जानता भी नहीं। उसे भी अब जाना कि ऐसा है। इस वक्त पंजाब में है। अगर पास चला, तो पहुँच तक के लिये गुनहगार हूँगा। तुम क्या कहते हो?"

विजय—"चलो, कांग्रेस का काम करें।"

अजित—"कांग्रेस का हाल पूछो मत। यहाँ जो महाशय त्रिवेणीप्रसाद हैं, वह दोनो तरफ़ रँगते हैं, ऐसे जीव हैं। मैं गया था। दूसरे दिन हज़रत दाग़ फिर ऐसे बैठे कि उठे ही नहीं। समझे? एक बात है। देहात में सिक्का जम सकता है। रायबरेली-जिले में कुछ काम भी हो रहा है, और अभी महीने-भर पहले मैंने एक व्याख्यान भी दिया था, किसानों की सभा थी, मैं मामा के यहाँ से देखने गया था। लोगों ने क़द्र की थी। वहाँ काम चल सकता है, और यह जो तुम्हारा प्रकरण है, इसका भी बहुत कुछ रहस्य वहाँ से मालूम हो सकता है। वहाँ के

किसान मुझे पहचानते हैं। दो केंद्र कर लेंगे, और कांग्रेस से न होगा, तो स्वतंत्र रहकर काम करेंगे।"

विजय—"ठीक है, चलो, कुछ अनुभव ही प्राप्त होगा।"

चाय पीकर विजय आराम करने लगा। अजित कुछ काम से विजय से कहकर बाहर गया।

---

# ( ७ )

"सुराज क्या है रे ?" बुधुआ ने महँगू से पूछा। "किसानों का राज।" गंभीर होकर महँगू ने कहा।

महँगू व्यापारी है। लकड़ी का कारोबार करता है। देहात में खड़े बबूल ऊसरों और काश्तकारों के खेतोंवाले मोल लेता है। काश्तकारोंवाले किफ़ायत से मिलते हैं, जमींदार अपने सिपाहियों से कटवाने में मदद करता है। महँगू को काफ़ी मुनाफ़ा हो जाता है। आठ महीने तक, लकड़ी कटवाना, लदवाना और कानपुर में बेचना, यही महँगू का काम रहता है। चार महीने बरसात-भर जुआर, अरहर, तिल्ली, सन, मूँग, उड़द आदि की खेती कर घर रहता, फिर क्वार में चने और जव-चनी असींच बो-बवाकर कार्त्तिक से अपना काम शुरू करता है। गाँव में शहर की ख़बरों का एक मुख्य रिपोर्टर, किसानों का ज़मींदार से मिला हुआ भी नेता। गाँव के रिश्ते में बुधुआ चचा लगता है, महँगू भतीजा।

"तो क्यों रे महँगू !" बुधुआ ने पूछा—"फिर ये ज़मींदार और पटवारी क्या करेंगे ?"

"झख मारेंगे और क्या करेंगे ?"

बुधुआ कुछ समझ न सका कि ये देश में, गाँव में रहते

हुए कैसे झख मार सकते हैं। महँगू भी गहराई तक नहीं समझता था। सुनता था जो कुछ, पचीसों उलट-फेर के बाद खुद भी न मानता था कि यह पुलिसवाली सरकार और जमींदार लोग लगानवाला हक़ छोड़कर ख्वाब की तरह कैसे गायब हो जायँगे। पर दूसरों को नेताओं की तरह समझाना उसकी आदत पड़ गई थी।

बुधुआ ने डरते-डरते, पलकें तिलमिलाते हुए धीरे से पूछा—"ये कहाँ जायँगे रे महँगू ?"

"तू तो बात पूछता है, और बात की जड़ पूछता है। गंधी महरानी का प्रताप ऐसा है कि इनके हाथ बँध जायँगे, और बोल बंद हो जायगा। तब ये किसानों के तलवे चाटेंगे।" महँगू अपनी दाद खुजलाने लगा।

"तो लगान फिर किसको दिया जायगा ?"

"किसी को नहीं, लगान दिया गया, तो सुराज कैसा ? बिद्यारथीजी समझा रहे थे. अब के जब मैं कंपू गया था।"

"तब तो बड़ा अच्छा है।"

मैकू भी खड़ा सुन रहा था। अपनी समझ पर जोर देते हुए कहा—"यह बूढ़ा हो गया, पर समझ रत्ती-भर नहीं। मैं लछमनपुर गया था। वहाँ बाबू साहब के घर के लड़के कह रहे थे कि तिलक महराज कहते हैं कि जमीन रियाया की है, जमीदार को लगान न दिया जाय।"

मुक्खू ने सानी करना बंद कर, आवेश में आकर कहा—

"जिसकी लाठी उसकी भैंस, अभी गाँव-भर के आदमी मिल जाओ, दूसरा गाँव लूट लो।"

"बड़ी बातें न बघार।" मुक्खू के भाई लक्खू ने कहा—"सरकार ने तोप के बल हिंदुस्तान फते किया है. जबानी कैफियत से न छोड़ देगा, साले, कर देगा रपोट चौकीदार, तो चूतड़ की खाल निकाल ली जायगी; बकने दे इनको आयँ-बायँ, अभी शेर हैं, जिमीदार के सामने चूहे बन जायँगे, नहीं तो चलेगा हंटर डिल्लीवाला।"

महँगू ने सोचा, कहीं इसने मुझे भी लपेटा, तो बड़े पेंच में पड़ूँगा; फिर एक सूत न सुलझेगा। बदलकर बोला—"देखो न लक्खू भैया, तुमसे रुई से काम, कपास का हाल क्या पूछते हो? दुनिया है, कोई किसी रंग में, कोई किसी रंग में। शहर का हाल पूछते हो, बतला दिया; नहीं, बात की जड़ पूछेंगे।"

नजदीक ही, निकास पर, बीरन पासी घर की बनाई शराब पिए, अपनी चौपाल में बैठा, नशे में बातचीत का मजा ले रहा था। ये छ भाई हैं। हरएक के दो-दो, चार-चार, छः-छः लड़के। इनमें भी आधे से अधिक जवान। छहो भाई अलग-अलग घर बनवाकर रहते हैं। रात को सबकी निगरानी होती है। मशहूर बदमाश। गाँव में हाथी मारकर ले आवें, हज्म हो जाय। पुलिस पता लगाती रह जाय। गाँव-भर लोभ तथा भय से इनसे सहयोग करता है। इनकी बदौलत लोधों के यहाँ भी चाँदी के गहने हो गए। चोरी का माल चवन्नी क़ीमत पर बिकता है। ज्यादा

सामान—सोना-चाँदी—गाँव तथा पड़ोस के महाजनों के यहाँ दूसरे-दूसरे रूप में मिलेगा। रामदीन सोनार सोना और चाँदी गलाकर दूसरे ढाँचे में गढ़ देता है। थानेदार और पुलिस के सिपाही ठेके से शराब नहीं खरीदते, बराबर बीरन वग़ैरह के यहाँ से चालान चौकीदार के हाथ जाता है। शक्ति, संगठन, कार्यकलाप, सभी तरफ़ से गाँववाले बीरन के खानदान से डरते हैं। गाँव का नेतृत्व बहुत कुछ इन्हीं के हाथ है। जमींदार भी इन्हें मानता है। बेगार, हल, बेड़ी, भूसा, रस आदि रक़म सिवा इन्हें नहीं देनी पड़ती। इनकी रातवाली आमदनी काफ़ी रहने पर भी ये तंगदस्त रहते हैं। इधर थानेदार की निगाह बदल गई है, क्योंकि कुछ रुपए—सब लोगों से केवल ६००) उन्होंने माँगे थे। पर ये नहीं दे सके। पुलिस से तंग आ इन्हीं लोगों ने गाँव को सलाह देकर सभा कराई। पर बाहरी सूरत से सभा से बाहर थे। महँगू की चालबाजी से बीरन को बड़ा क्रोध आया कि पलट रहा है, बेचारे बुधुआ को पिटवावेगा। पहले से सलाह हो चुकी थी कि अब के महाजन से क़र्ज़ लेकर लगान न चुकाया जाय। जिसके खेत की जैसी पैदावार हो, वह वैसा ही लगान दे। देखा जाय, जमींदार क्या करता है। बुधुआ बड़ा ही ग़रीब किसान है, फिर अब के उसके खेत की खरीफ डेढ़ हाथ से ज्यादा नहीं बढ़ी; वह भी जगह-जगह जली हुई। इसीलिये उसे सुराज की सबसे ज्यादा खोज है कि दो-चार रोज में मिल जाय, तो जमींदार के कोड़ों से पीठ का निकट

संबंध जाता रहे। बीरन यह सब समझता था। चुपचाप उठकर झूमता हुआ महँगू के पास पहुँचा, और हाथ पकड़कर, अकड़ से पूछा—"क्यों रे साले, तू बबूलों का ठेकेदार है या सुराज का भी। गाँव के गरीबों के बबूल काट लिए। जिनके खेतों में थे, उनके अनाज की पैदावार घटी या नहीं? कुछ जगह बबूल छाँह मारते रहे? फिर, खेतों का पूरा लगान सबने चुकाया? तो बोल साले, वे बबूल किसानों के थे या जिमींदार के?"

महँगू के होश फाख्ता हो गए। लगा गिड़गिड़ाने—"भैया, मैं कानून क्या जानूँ, मैं तो यही जानता था कि जो पेड़ जिमींदार बेचते हैं, वे उन्हीं के हैं। तुम कहो, तो मैं कान पकड़ता हूँ (एक हाथ से कान पकड़कर), अब कभी जो ऐसा काम करूँ।"

बीरन ने छोड़ दिया। सोचा था—"इस साले के पीछे साल-भर और ससुराल हो आऊँ। सुराज समझता है ढफाली कहीं का। हम लोग कलकत्ता, बंबई, लखनऊ, इलाहाबाद तक पैज भरते हैं, पर किसी से नहीं कहते। दद्दा कमिश्नर साहब की कनात काटकर, ऊपर से डंडे-डंडे उतर गए। उनकी बाकस उठा लाए, ऐन मेले में, और सिपाही पहरा देते रह गए। कह-बदकर उठा लाए। तीसरे दिन बाकस दी। कमिश्नर साहब ने पीठ ठोंकी, और बहादुरी में नाम लिख दिया। वे जीते-जी मर गए, पर कभी अपनी जुबान से बहबूदी न बघारी। और, यह बित्ते-भर की मेख—जी में आता है, गाड़ दूँ साले को—जहाँ देखो, वहीं खटक रहा है। तू ही कंपू जाता है? बिद्यारथीजी ने तो

यह भी कहा है क्यों बुद्धू काका ? (हाँ बच्चा, कहा है, बिना बात सुने बुद्धू ने गवाही दी, और मुँह बाए खड़ा रहा) कि बाजार से मुसलमानों का काटा बकरा न मोल लो, खाओ, तो काटकर खाओ। ठेके से शराब न खरीदो, पियो, तो बनाकर पियो—सूबेदार बाबा के लड़के हरनाथ काका कहते थे कि नहीं गनेशपुरवाले ?"

बीरन से सहयोग करने के लिये, विशेष उत्साह के साथ, झूठ पर सचाई का जोर देकर सुक्खू ने कहा—"अभी परसों तो, मेरे सामने कहा, चारा लेने आए थे।"

"खबरदार, जो बात हो चुकी है, उससे कोई टला, तो खैर न समझे, फिर वह है या बीरन।" सबको सूचना देकर बीरन अपने घर की तरफ बढ़ा ही था कि जमींदार का सिपाही दूसरी गली से आया, और बुधुआ को पकड़कर डेरे की तरफ घसीटा—"चल, मालिक बुलाते हैं।" करुण स्वर से बुधुआ ने बीरन को पुकारा, पर बीरन ने सुनकर भी न सुना, दरवाजा खोलकर भीतर चला गया, और लोग भी लंबे पड़े।

"वहाँ चल, उसको क्या पुकारता है, वहाँ कुगोटी का हाल पूछ, और देख आटा-दाल का भाव।" बुधुआ को घसीटता हुआ सिपाही डेरे ले चला।

जमींदार पं० कृपानाथ डेरे पर तप रहे थे। यह एक ही गाँव उनकी जमींदारी है। उनके पिता पहले होटल में रोटकरे थे। फिर लखनऊ में संडीले के लड्डू बेचते रहे। फिर कपड़े

को फेरी की। बाद सिंगर की दो मशीनें खरीदकर रूमालों का कारखाना खोला। धीरे-धीरे बड़े आदमी बन गए। इधर जब प्राचीन-राज-वंशावतंस नवीन सभ्यता की आग में ऋण के रुपए तृण की तरह फूँकने लगे, और सभ्यता की ज्वाला राजा के बाद राज्य को भी दग्ध करने चली, तब सरकार ने यथाधर्म उपाय का जल सींचा, अर्थात् संपत्ति को बचाने का विचार कर कुछ गाँव नीलाम करना निश्चित किया। यह गाँव भी नीलामवाली नामावली में जुड़ा। इसके कई खरीदार खड़े हुए। पर कृपानाथ के पिता इस गाँव के ज्यादा नजदीक थे। अर्जी में इस निकटतम संबंध का उन्होंने उल्लेख भी किया कि चूँकि दूसरे खरीदारों से वह इस गाँव के ज्यादा नजदीक रहनेवाले हैं, इसलिये उनका हक़ भी ज्यादा पहुँचता है। बड़ी सिफ़ारिशें करवाईं, हुक्कामों की मुट्ठी भी गर्म की। अंत में सत्तर हजार का मौजा तीस हजार में उन्हें ही मिला। अब वह नहीं हैं, उनके पुत्र कृपानाथ जमींदार हैं।

बुधुआ को देखते ही कृपानाथ आग हो गए—"क्यों रे, अभी पर साल के लगानवाले दो रुपए बाक़ी हैं, नजर की बात नहीं, इस साल भी अधकरी का वक्त आ गया, तू देने का नाम नहीं लेता! देता है आज रुपए या मुर्ग़ा बनाया जाय?"

बुधुआ इतना घबराया कि उसकी जबान बंद हो गई, खड़ा

सिर्फ़ काँपने लगा, जो रुपए न रहने का रोएँ-रोएँ से दिया हुआ उत्तर था। बुधुआ की हालत प्रायः अच्छी नहीं रहती। कारण जमींदार साहब स्वयं हैं, दूसरे खेतों से कम निर्ख़ पर जो खेत उसे देने की उन्होंने कृपा की, वे उपज में ऊसर से बराबर होड़ करनेवाले, प्रायः महाजन को डेढ़ी का नाज भी नहीं दे सकते। इसलिये बुधुआ का पेशा काश्तकारी केवल लिखाने के लिये है, करता है वह मजदूरी। इसी से पेट काटकर किसी तरह उसने यहाँ तक लगान चुकाया।

जवाब न पा जमींदार साहब ताव में आ गए। तब तक लक्खू भी पहले की बातचीत से घबराया हुआ, सफ़ाई देकर बचने के विशद उद्देश से, जमींदार के पास आया, और बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम कर, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। "क्या है लक्खू!" चालाक चितवन, पर सस्नेह स्वर से कृपानाथ ने पूछा।

"यही कि मालिक, गाँव बिगड़ रहा है।" हाथ मलते हुए लक्खू ने कहा। पाले की पलित अरहर-जैसे तमाम अंगों से मुरझाया हुआ, झुलसी कलियों-सी आँखों में ओस के अश्रु-कण, बुधुआ ने लक्खू को प्रखर-मुख किरणों में, अनिमेष-क्षण, कृपा-कांक्षित देखा।

बुधुआ से लक्खू और लक्खू से जमींदार की ओर निर्झरी-सी वक्र फिरती हुई कृपा-प्रार्थना स्वाभाविक चाल से चलती

रही। जमींदार को सकोच, सप्रश्न, साग्रह अपनी तरफ़ देखते हुए लक्ष्य कर बर्फ हुए लक्खू से हर्फ़-हर्फ़ झूठ समाचार निकलने लगे। कहा—"यह सुराज की खोज में नेता की तरह तत्पर है, सरकार और जमींदार के दो पाटों में रहकर पिसने से नहीं डरता, लोगों को अपनी लीक पर ले चलने को बछड़े-जैसे फेरता फिरता है, कहाँ से भगवान् जाने इसके पास खबर आती है। अब रियाया को लगान न देना होगा, दिन-भर इसी काम में तत्पर रहता है।" बुधुआ कमज़ोर था, और उससे लक्खू का कोई स्वार्थ न था, इसलिये उसने गुनाह बेलज्जत नहीं किया। पासियों के ख़िलाफ़ एक आवाज़ उसने नहीं उठाई। ऐसे प्रोपागैंडा के पेच से सच्चा मतलब निकालते हुए बुधुआ को देर न लगी। अपने दरिद्र भाल पर मन-ही-मन कराघात कर ईश्वर-स्मरण करने लगा। लक्खू कृपा के पुरस्कार के लिये स्वामी के निश्छल सेवक की तरह हाथ जोड़े अचल, अनिमेष दृष्टि से खड़ा रहा।

एक तुच्छ गँवार किसान भी इतना क्रूर सकता है, जमींदार न समझे। उनकी समझ में निस्तरंग जल-तल की तरह उनकी ज़मींदारी के लोग बराबर-वैपक्षिक शक्ति धारण करते हैं, फिर कल-कल स्वर से विरोध-प्रचार करने में सभी जल-मुख मुखर हो सकते हैं। इस बीज-मंत्र के प्रायः सभी ज़मींदार प्रत्यक्ष भाष्य, ज़मीन की स्वल्पाधिक उर्वरा-शक्ति मानते हुए भी खाद के गुण-परिणाम से शक्ति-परिमाण को भी साथ-साथ

बराबर कर देते हैं। इसलिये बुधुआ के कार्य-कलाप पर संदेह की छाँह को पेड़ भी मिला। अपने अहाते में, अपने मातहत आदमियों के बीच, अपनी महत्ता के आप ही प्रमाण, हाथ में डंडा लेकर जमींदार कृपानाथ पशुवत बुधुआ की बुद्धि को प्रहार से पथ पर लाने लगे। क्षीण, दुर्बल, मनुष्याकार, वह चर्मास्थि-शेष प्रत्यक्ष दारिद्र्य कृपा-प्रार्थना की करुण दृष्टि उन्मीलित कर रह गया। प्रहार से पीठ फट गई, मुख से फेन बह चला, वहीं पृथ्वी की गोद में वह बेहोश हो लुढ़क गया।

अजित के इंगित पर जीवन का पूर्व-निश्चित मार्ग स्थित कर उसी रोज़ शाम की गाड़ी से विजय अजित के साथ उस गाँव पहुँचा। अजित को गाँववालों से विजय का परिचय करा देना था। गाँव के बाहर एक मंदिर और उसी से लगी हुई अतिथिशाला है। सामने चारो ओर से बँधा हुआ पक्का तालाब, बग़ल में कुआँ, फुलवाड़ी। कोई रहता नहीं। सुबह-शाम स्त्री-पुरुषों की भीड़ स्नान, पूजन और कसरत के लिये होती है। यहीं दोनो आकर कुछ देर के लिये विश्राम करने लगे।

बुधुआ के मार खाने के बाद लोग आपस में मिलते हुए रास्तों, खेतों और घरों में वही चर्चा करते रहे। इस साल भी जुवार की अच्छी उम्मीद नहीं। गत दो वर्ष रबी अच्छी नहीं हुई। अधिकांश किसान महाजनों के क़र्ज़दार हो चुके हैं। इस साल भी क़र्ज़ से लगान चुकाया था। अभी तक उनका पूरा व्याज नहीं वसूल हुआ। अब क़र्ज़ मिलने की कोई आशा नहीं, न लगान चुकाने की गुंजाइश है। महाजन दावा करने की धमकियाँ दे रहे हैं। इधर ज़मींदार का भी जूता चलने लगा। छिप-छिपकर लोग पासियों की सलाह लेने लगे, और उनके वीर-रस के व्याख्यान से पूरे प्रभावित

हो किसी का ज़रा-सा इशारा मिलने पर विद्रोह के लिये—यानी बिना दाम के, लगाम न मानने के लिये—तैयार हो गए। ज़मींदार के चले जाने पर पासियों के पश्चात् सब लोग बुधुआ के घर गए। ज़मींदार ने उसे उठवाकर भेज दिया था। उसकी फटी पीठ और हाथों के स्याह दाग़ों पर, जो डंडे पड़ने से पड़े थे, गर्म हल्दी बँधवाई, और आपस में मिल जाने के सलाह-मशविरे करने लगे।

इसी समय विजय को लेकर अजित गाँव में पैठा। निकास के पास ही बुधुआ का मकान था। बाहर आदमियों को देखकर अजित उसी सीधे, दूसरी राह छोड़कर, गया। द्वार पर लोगों के रहने के कारण अंडी के तेल का दिया रक्खा था। छप्पर के नीचे कई मस्तक एक दूसरे के इतने निकट थे कि पुलिस को तत्काल जुआ खेलने का शक होता। अजित ने अपना मुख-बंध मन-ही-मन तैयार कर, बढ़कर खुलती आवाज़ से पूछा—"क्यों, सब लोग अच्छी तरह तो हो? सभा के बाद फिर कोई ख़ास बात तो नहीं हुई? हमें पहचाते हो न? सभा में हम आए थे।"

इतने परिष्कृत परिचय से कई पहचानवाले निकले। ऐसी असंभाव्य घटना हुई कि लोगों को दुख की रात ही में सुखकर प्रभात हुआ, हृदय के कमल खुल गए। "नेताजी आ गए।" हर्ष के उच्च स्वर से सबने संवर्धना की। "नेताजी आ गए।" यह ख़बर बीरन ख़ुद गाँव-भर को सुनाने के लिये उठा, और

जब तक वह गाँव-भर को वहीं बुला लाता है, तब तक वह कृपा कर बैठें, यह प्रार्थना कर, दौड़ता हुआ अपने घर से कंबल उठा लाया, और छप्पर के नीचे बिछा दिया। विजय और अजित बैठ गए। प्रदीप का प्रकाश हो रहा था।

हर्ष में कर्तव्य का ज्ञान नहीं होता। लोग अब तक अपना धर्म, जो सुराज दिलानेवाले नेता के प्रति है, भूले हुए थे—जैसे वे अपना धर्म, अपने ही व्यक्तित्व पर निर्भर स्वराज्य के एक ही उद्देश से बहु-फल-प्रसू महान् कर्म भूले हुए सुख की प्रतीक्षा में पर-मुखापेक्षी हो रहे हैं। विजय और अजित अपने स्वाभाविक परिच्छद में न थे। स्वेच्छा से नहीं, लोगों पर प्रभाव डालकर पक्ष-समर्थन के लिये भी नहीं, केवल कर्म के प्रसार द्वारा सहानुभूति और सत्य के विस्तार के लिये उन्होंने गेरुए वस्त्र धारण किए थे। उन दिनों कानपुर में लाल-इमली-ऊलेन-मिल्स, काटन-मिल्स-जैसे कारखानों में देशी वस्त्रों का वयन विदेशी सूत-सूत्रों के चयन से होता था, जिसका विस्तार देहात तक कोरियों और जुलाहों की गजी और गाढ़े में भी हो चुका था, शांतिपुर, ढाका बंगलदी, अहमदाबाद, सब जगह विदेशी सूत की ही आबादी थी। अतः इनके वसन के रंग तक में स्वदेशीपन न था। मिल के कपड़े गेरुए की मिसाल नारंगी रंग से रँगे थे। पर इनके भीतर जो रंग था, वह आज १९३२ ई० में भी मुश्किल से मिलता है। नेताओं को प्रणाम करने के उद्देश से गाँव के लोग उठे, और भूमिष्ठ-मस्तक, चरणोपांत

प्रणाम कर-कर श्रद्धा का भार इन दो दिव्याधारों पर रखने लगे। वीरन भी गाँव के आदमियों को, जिनमें अधिकांश किसान थे, लेकर आया। प्रणाम कर वीरन बुधुआ का हाल बयान करने लगा। कवि न होने पर भी प्रहार के वर्णन में उसने पूरा कवित्व प्रदर्शित किया—रूपक से रूप बाँधकर अत्युक्ति में समाप्त किया। आवेश में उसे यह नहीं सूझा कि इतनी मार का केवल जिह्वाग्र द्वारा वर्णन होता है या कोई मनुष्य इतनी मार सहन भी कर सकता है।

गाँव में शूद्रों की ही संख्या है। प्रायः सभी किसान। कुछ ब्राह्मण हैं, जो अत्यंत दरिद्र, बकरियों का कारोबार करते हैं, अर्थात् बकरी पालकर बच्चे बकर-क़साइयों को बेचते हैं। दो-तीन घर ऐसे भी हैं, जो काश्तकारी करते हैं। ब्राह्मण होने के कारण गाँव के लोगों में उनकी पूजा है, पर तभी तक, जब तक वे गो-ब्राह्मण हैं। यह मनोभाव ये लोग समझते थे। इसलिये अपनी पूजा प्रचलित रखने के विचार से बराबर गाँव के अधिकांश लोगों के साथ रहते थे। इधर पासियों का प्राधान्य होने पर उन्हीं की प्रभुता मानकर रहते रहे। बुलाने पर सोलहो आने गाँव आया। बचाव की सबकी इच्छा थी, और एकाएक वैसी व्याख्यावाले सुराज के प्राप्त होने पर महामूर्ख ही फल-भोग से विमुख होगा। सब लोगों ने समस्वर से वीरन की वक्तृता का समर्थन किया।

बात बहुत अंशों में ठीक भी थी। विजय ने उस किसान को

देखने की इच्छा प्रकट की। गाँववाले सावधानी से उसे भीतर ले गए। बुधुआ को देखकर बीरन की अत्युक्ति विजय और अजित को छोटी जान पड़ी। मार के बाद घाव भीग चुके थे। हाथ-पैर फूलकर स्वाभाविक आकारों को अत्यंत अस्वाभाविक कर रहे थे। बाक़ी दो रुपए लगान के लिये उसकी यह दुर्दशा हुई है—जानकर इन लोगों की दशा के सुधार के लिये विजय ने जान तक देने का निश्चय कर लिया।

सब लोग बाहर आए। जमींदार के उपद्रवों से बचने के लिये गाँव के लोगों को किस प्रकार संगठित होना चाहिए, एक अलग कोष सर्व-साधारण की भलाई के लिये एकत्र कर रखने पर मौक़े पर काम देता है, नहीं तो उपाय-शून्य ग़रीब रियाया जमींदार का मुक़ाबिला नहीं कर सकती, फूटकर एक-एक आदमी जमींदार से कमजोर होने के कारण लड़ नहीं सकते, इसलिये उनका संगठन जरूरी है; जो भीख भगवान् के नाम पर भिक्षुकों को दी जाती है, प्रतिदिन यदि उतना अन्न निकालकर एक हँडी में रख लिया जाय, और महीने के अंत में गाँव-भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाय, तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालकों को प्रारंभिक शिक्षा दे सकते हैं, जो तमाम दिन व्यर्थ के खेल-कूद और लड़ाई-झगड़ों में पार करते रहते हैं; जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कंधे पर रक्खा रहेगा; अज्ञान के अँधेरे गढ़े से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों

से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिये बहुत ज़रूरी है। यहाँ लोग यह भी नहीं जानते कि किस तरह दस मन की जगह पंद्रह मन अनाज पैदा किया जा सकता है; क्यों यहाँ के लोग इतने दुखी और सदा सताए हुए रहते हैं आदि-आदि। किसानों की सुविधा, सुयोग और उन्नति के मर्म से भरी अनेक प्रकार की बातें विजय ने सुनाईं।

जो-जो चित्र वह खींच रहा था, सदियों के अंधकार से मुँदे सबके हृदय का प्रफुल्ल पंकज प्रकाश पा जैसे एक-एक दल खोलता जा रहा हो, ऐसा आनंद लोगों को मिला। अपने भविष्य की इस सुहावनी कल्पना में बीरन और उसके भाइयों को शराब के नशे से भी ज़्यादा रंगीन, एक न जाने हुए न-जाने कैसा स्वर्ग सुखकर छवियों में भुला रखनेवाला मालूम हुआ। हृदय के सागर ने पूर्णेंदु को प्राप्त करने की लालसा के सौ-सौ हाथ फैला दिए। अब तक एक दूसरे के प्रति द्वेष का विष भर रखनेवाले जो सर्प थे, सुखकर स्वर सुनकर, काटना भूल, मंत्र-मुग्ध रह गए।

अजित ने याद दिलाकर उस भाषण के मुख्य कार्य पर कहा—"कल से कुछ चंदा एकत्र करो, और यह नेताजी लड़कों के पढ़ाने का भार लेंगे। सिर्फ़ इनके भोजन का सब लोगों को प्रबंध करना होगा।"

"इससे अच्छी ऐसे विद्वान् नेता के रहते गाँव की रक्षा की और कौन-सी बात होगी," लोगों ने प्रतिध्वनि की—"नेताजी

के रहने पर जमींदार न सताएगा, रक़म सिवा जो लगान की दूनी चाल से बढ़ रही है, रुक जायगी, लड़के पढ़-लिख जायँगे, गाँववालों को जैसे विधाता ने इच्छित वर दिया।"

पर बीरन को इतने ही से विश्वास न हुआ कि गाँववाले सचाई से ठीक राह पर चले जायँगे, जमींदार के बहकावे में न आएँगे। कई मर्तबे गाँववालों ने धोका दिया है। मुमकिन है, अब के भी दें। इसलिये उसने कहा—"भई, दूध का जला मट्ठा फूँककर पीता है। अब के सब लोग महादेव बाबा के थान पर चलकर क़सम करो कि कोई एका छोड़कर जमींदार की तरफ़ न जायगा।" जो लोग गाँव की फूट से कई बार मार खा चुके थे, और पीछे अपने घर-द्वार, रुपए-पैसे, बाल-बच्चों की रक्षा के लिये, मनुष्यता से हाथ धो, महीनों तक, जमींदार के पीछे-पीछे फिरते रहे, वे बीरन की इस बात से सहमत हो गए। पासी सब बीरन के साथ थे। इसलिये तमाम गाँव साथ हो गया। महादेवजी के मंदिर में सब लोगों ने क़सम खाई—"जो गाँव से फूटकर अलग हो, वह दोगला है।"

एक ब्राह्मण के यहाँ विजय और अजित के भोजन का प्रबंध हुआ। कच्ची बन रही थी। गृहिणी ने पति से पूछा—"ये नेता कौन जात के होते हैं?"

"कोई जात है इनके? रँगे स्यार हैं, पेट का धंधा एक कर रक्खा है।" गंभीर उत्तर मिला।

तीन-चार दिन तक अजित बुधुआ की सेवा तथा अपने केंद्र के निश्चय के लिये विजय के साथ ही रहा। शोभा के संबंध में भी उसने बातचीत की, और समझा कि उसके लिये विजय के हृदय में स्थान है। यदि वास्तव में उड़ी हुई खबर झूठ है, पर ज्यादा झुकाव देश-सेवा की ही तरफ उसका है। शोभा को प्राप्त कर गार्हस्थ्य सुख की लालसा उसे नहीं, केवल शोभा को सम्मान की दृष्टि से देखने से वह विरत न होगा। विजय की शिक्षा, अध्ययन और चरित्र नवीन यौवन में ही जीवन की जितनी गहराई तक पहुँच चुके थे, अपने संस्कारों से जिस रूप में उसे बदल चुके थे, वहाँ से उसका प्रवर्तन जीवन का ही नष्ट होना था, किसी के इच्छित एक दूसरे रूप में बदलना नहीं। अजित भी, स्वभाव के दूसरे परमाणुओं से गठित होने पर भी, सहानुभूति में विजय की ही तरह मनुष्य था। इसलिये मित्र से बातचीत कर एक बार और केवल समझ लिया, और अपने मुख्य उद्देश के साथ गौण का स्वरूप बतला, विजय से विदा होकर, उसकी ससुराल की तरफ गया। वह और कोई भी समझदार किसानों की वैसी हालत में काम कर किसी भी जगह जड़ जमा सकता है, जिसे किसी प्रकार के

भी दुःख को वीर्य के पुष्ट, सुदृढ़ भुजों में निर्भय बाँधने का हार्दिक उत्साह हो, सुबोध अजित यह खूब जानता था।

वर्षा के जल के दबाव से तट और तराइयों को भी छापकर बहनेवाली क्षुद्र नदियों की तरह, सुराज की प्राप्ति से लगान न देने का कल्पित सुख जनता के दुःख-हृदय के दोनो कूल प्लावित कर बहने लगा। पड़ोस के प्रायः सभी किसान इस प्लावन के सुख-प्रवाह में बह चले। बुधुआ के दुःख में सेवा करनेवाले, किसानों के बालकों को केवल भोजन प्राप्त कर पढ़ानेवाले विद्वान् स्वामीजी शीघ्रातिशीघ्र पड़ोस के गाँवों में प्रसिद्ध हो गए। उनके पहुँचने के दूसरे दिन प्रभात से उनके वस्त्रों का रंग और ज्योतिर्मय नेत्र देख जनता नेता कहना छोड़कर स्वामीजी शब्द से अभिहित करने लगी। देखते-देखते अनेक गाँवों के साधारण किसान स्वामीजी के अनन्य भक्त हो गए। वे लोग अपने यहाँ भी वैसी ही योजना करने को उत्सुक हुए। विजय ने पाँच-छ गाँवों में, जहाँ से मदरसे दूर थे, और किसान-बालकों को पढ़ने की असुविधा थी, उसी तरीक़े पर साधारण शिक्षा देनेवाला, उसी-उसी गाँव का मामूली पढ़ा-लिखा, क़लम की नौकरी करने में अयोग्य, गृहों में हताश रहनेवाला एक-एक युवक नियुक्त कर दिया।

बुधुआ बहुत कुछ अच्छा हो गया, पर अभी काम नहीं कर सकता। गाँव में टहल लेता है। पीठ के दरारों पर पड़ी पपड़ियों से मार के निशान साफ़ जाहिर हैं। दोनो हाथों में

बाज़ बाँधनेवाली स्त्रियों के स्याह दाग़-जैसे मार के निशान कई जगह स्पष्ट हैं।

बुधुआ ने सुना, आज गाँव में डिप्टी साहब का दौरा है। दौड़ा हुआ बग़ीचेवाली शाला में स्वामीजी के पास गया! लड़के पढ़ रहे थे। हाँफते हुए विजय को डिप्टी साहब के आने की खबर दी। उसकी इच्छा जानकर विजय उसे डिप्टी साहब के पास ले चलने को राजी हो गया। सुना, डिप्टी साहब एक पहर दिन रहने से शाम तक इजलास करते हैं, भवानीदीनवाले बाग़ में ख़ीमे गड़ चुके हैं, दफ़्तर, उनके मातहत अफ़सर, सिपाही और नौकर-चाकर आ गए हैं, डिप्टी साहब भी शिकार कर जल्द आनेवाले हैं, नाम है सरदारसिंह। गाँव के जमींदार और पटवारी सुबह से ही गाँव आए हुए किराए के टट्टू-जैसे दौड़-धूप कर रहे हैं।

देखते-देखते चरण कुम्हार, पलटू अहीर, छक्कन और घसीटा चमार, लाला, गंगादीन, जगतू वग़ैरह मिश्र जातियों के कई आदमी स्वामीजी के पास उपस्थित हुए, और हाथ जोड़कर साक्षात् ईश्वर के सामने जैसे, अमित-विक्रम, इंगित-मात्र से शासन-चक्र चूर्ण कर सुखकर सुराज दिलानेवाले ऐंद्रजालिक नेता स्वामीजी के सामने परम भक्ति-भाव से नत-मस्तक खड़े हो गए। किसी भी मंद संवाद से स्वामीजी को इनकी मानसिक दशा से प्राप्त दुःख के इतना दुःख न होता। डिप्टी साहब के शुभा-गमन में इन्हें कितने अशुभ की शंका है, इनकी भक्ति की छाप में

मुद्रित हृदय के वाक्य-कलाप स्वामीजी ने पढ़ लिए। विशेष ज्ञान की प्राप्ति के लिये उन्होंने चरण से प्रश्न-पथ पर प्रथम चरण रक्खा—"क्या बात है चरण ?"

"स्वामीजी, हर साल साहब आते हैं, और आबदस्त तक के लिये बासन मुझे भेजने पड़ते हैं। नौकर-चाकर जितने हैं, चपरासी तक, लोटे मलने की मेहनत बचाने को, मुफ्त के कमोरे ले-लेकर जंगल जाते हैं। गगरी, पर्छे, नाँद, कमोरे, बड़े से छोटे तक, एक बासन घर में नहीं रह जाता। महराज, पाँच-छ रुपए का धक्का सहता हूँ।" चरण भक्ति-पूर्वक व्यथा कहकर साश्रु अनिमिष रह गया।

डिप्टी साहब को नाँद भी देने पड़ते हैं, यह सोचकर विजय को हँसी आ गई। सकौतुक पूछा—"तो नाँद क्यों देते हो चरण ? डिप्टी साहब को सानी का भी शौक़ है ?"

"महराज, घोड़े जो साथ रहते हैं।" विशुद्ध हृदय से चरण ने कहा।

"तुम्हें दाम नहीं दिया जाता ?"

"दाम मिलता होगा, तो जिमींदार की जेब में रह जाता होगा।" चरण ने तअज्जुब से सोचते हुए कहा।

"अच्छा, अब के दाम लेकर बासन देना या कह देना, नहीं हैं।"

फिर पलटू अहीर बढ़ा, और चिर काल के प्रहार से जैसी प्रकृति बन गई थी, उसी अभ्यस्त न्यस्त मुद्रा से, टूटी आवाज़,

बोला—"महाराजजी, डिप्टी साहब को बीस सेर दूध बिना दाम देना मेरा काम है, और बीस सेर में भी उन्हें क्या होता है, पर मेरे पास इससे ज्यादा का ठिकाना नहीं, बाक़ी गाँव से वसूल होता है।"

छक्कन और वसीटे ने शिकायत की—"पहर-भर रात रही, तबसे बीघे-भर की घास छीलकर छोलदारियों की जगह बनाई, अब मालिक कहते हैं, लकड़ी चीर दे। दाम कुछ नहीं मिलता।" औरों ने भी बेगार की शिकायत की।

क्रोध से विजय का चेहरा लाल पड़ गया। पर उसने नहीं सोचा कि यह सब गाँवों में पैतृक अधिकारों की तरह अशक्तों पर शक्तिवालों के सनातन अधिकार में दाखिल है। सदर्प उसने कहा—"क्यों तुम लोग ऐसा करते हो? आपस के झगड़े में एक भाई की खोपड़ी में लट्ठ मारकर फाँसी में लटक जाते हो, और इस अन्याय के सुधार के लिये जान पर नहीं खेल सकते? साहब तनख्वाह और दौरे के लिये राह-खर्च नहीं पाते? फिर तुम्हें देने से क्यों इनकार करते हैं? और अगर देते भी हों, तो अब के पता चल जायगा कि वह जमींदार के पेट में जाता है या दफ्तर में ही हज्म कर लिया जाता है।"

लोगों को जैसे आत्मा के भीतर बल प्राप्त हुआ हो, उनका मानसिक शरीर शक्ति के प्रवाह से धुएँ से गुब्बारे की तरह फूलकर, हर सिकुड़न को भरकर, जैसे यौवन में भी न प्राप्त किया हुआ पूर्ण हो गया। एक ऐसी हिम्मत आई, जो आज

तक नहीं आई थी, जैसे 'मुश्किल-आसान' के सब मन में प्रत्यक्ष प्रमाण बन रहे हों।

"जब तक डरोगे," विजय ने कहा—"डर पीछा नहीं छोड़ सकता, यही मुद्दतों से भरी हुई, तुम्हारे अंदर स्वभाव की कमज़ोरी है। अगर पढ़-लिख नहीं सके, और पढ़-लिखकर भी लोग कभी ज़्यादा गिर जाते हैं, जब बुद्धि को बुरे स्वार्थों की तरफ़ फेरते हैं, खैर, तो भी तुम अपने स्वभाव को ऊँचा उठाने की कोशिश कर सकते हो। जब देखो, किसी काम के लिये दिल नहीं तैयार, तब ज़रूर-ज़रूर उसे करने से इनकार कर दो। अरे, मौत तो चारपाई पर भी होगी, फिर ख़ुद क्यों नहीं उसका सामना करना सीखते? अच्छा, जाओ, लड़कों की पढ़ाई रुक रही है।"

सब लोग चल दिए। चलते समय प्रणाम करना भूल गए, इतनी शक्ति भर गई थी भीतर, संस्कारों से बना-बनाया हुआ वह शरीर ही उन्हें भूल गया था। उस वक़्त वे शक्ति-शरीरवाले बन रहे थे। बड़े जोश से लौटे हुए घर जा रहे थे कि लाख माँगने पर भी बिना दाम बासन न दूँगा, बेगार हरगिज़ नहीं कर सकता—मैं नौकर हूँ?

सौ क़दम जाने पर छक्कन को अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ—एक दफ़ा पुलिस की बेगार का बुलावा आया था, वह घर से नहीं निकला, औरत ने कहा, वह नहीं है, तब पुलिस के सिपाही घर में घुसकर मारते-मारते उसे बाहर ले आए थे, और

बेगार कराई थी, बोझ लेकर उसे थाने तक जाना पड़ा था। अगर उसे बेगार न करनी होती, तो चमार के बदले वह जमींदार होकर न पैदा होता? जब वह ब्राह्मण-ठाकुर नहीं, तब ईश्वर ने ही उसे बेगार खटनेवाला चमार बनाकर भेजा है। करनी का फल तो सभी को भोगना पड़ता है।

जिस तरीक़े से विचार करने का उसे अभ्यास, बाप-दादों से मिला हुआ संस्कार था, उसकी उधेड़-बुन में पहले ही की तरह जाल बुनकर अपने को उसने फाँस लिया, और बड़ी देर से ग़ायब रहने पर डरा। जमींदार उसे खोजते होंगे। यह कोई मामूली थाने के सिपाही नहीं, डिप्टी साहब हैं, जो इजलास में बैठकर फ़ैसला करते हैं। हाँ को ना और ना को हाँ करने का जिन्हें पूरा अख़्तियार है। उसे सजा कर दें, तो बाल-बच्चे भूखों मर जायँ।

सोचकर, डरकर उसने कहा—"चरण काका, तो फिर क्या कहते हो?"

जो दशा राह चलते हुए छक्कन की थी, वही चरण काका तथा और सब की थी। चरण ने कहा—"स्वामीजी ने तो जबान-भर हिला दी, यहाँ तो बासन न गए, तो पीठ का चमड़ा न रह जायगा।"

"तो स्वामीजी किसी के साथ बाँस न बजावेंगे। लखुआ ठीक कहता था," मधुआ ने कहा—"जिनके पास तोप और बंदूक है, वे जबान से नहीं मान सकते।"

"तो तुम दोगे बासन ?" छक्कन ने पूछा।

"बासन देता हूँ, तो स्वामीजी का मान नहीं रहता; नहीं देता, तो मार खाता हूँ। कहो सजा बोल दें डिप्टी साहब, तब चाक स्वामीजी न चलावेंगे, लड़के मर जायँगे भूखों। इधर ठोकर भी ५-६ रु० की पड़ती है।" चरण ने द्विविधा करते हुए कहा।

"भाई, हम तो जायँगे," मधुआ ने कहा—"एक दिन की मजूरी न सही।"

"भाई, सुनो, पलटू पलट नहीं सकता, पूरब के सूरज चाहे पछाँह में उवें।" पलटू ने कहा।

"साले, अहिर का मूसर, कल से ढोर निकालना मुश्किल हो जायगा, बड़ी वीरता बघारता है, दरवाजे के खूँटे उखड़वा डालेगा ज़मींदार। है तेरे बिस्वा-भर कहीं ज़मीन, जहाँ ढोर खड़ा करे ?" चरण ने डाटकर कहा।

"मैं नदी-पार ससुराल जा बसूँगा, वह कहती है, यहाँ ढोर मरे जाते हैं; न चारा, न घास; मेरे मायके में नदी के किनारे छाती-भर चारा होता है, और बिकता भी है मेंत। तू अपनी मिट्टी की सोच। साल-भर बर्तन गढ़ता है जिमींदार की मिट्टी से, और एक रोज बासन देते मुँह बिगाड़ता है।" लापरवाही से चरण ने कहा।

बुधुआ (काँखते हुए)—"लेकिन सब लोग कसम कर चुके हो कि कोई काम स्वामीजी और गाँव की सलाह बिना न

करोगे। अगर कोई करे, तो उसका हुक्का-पानी और गाँव के लोगों में उठना-बैठना बंद कर दिया जाय। अब तुम्हीं लोग ऐसा कह रहे हो !"

"अरे, तो बासन्न लिए बैठा है कोई कि ले जाय ? एक बात-की-बात कह रहा हूँ।"

"वाह रे चरण काका, तुमसे कोई सच-सच पूछे, तो तुम बात-की-बात कहो !"

"एह् ! गाँव चलोगे, तो पकड़ जाओगे, टहलते होंगे जम के दूत, मैं अब इधर से नाले में जाकर छिपता हूँ।" पलटू राह काटकर दूसरी तरफ़ मुड़ा। यंत्रवत् और लोग भी साथ हो लिए। सिर्फ़ बुधुआ रीढ़ टेढ़ी किए, उस पर एक हाथ रक्खे, एक हाथ एक घुटने से टेककर, दूने धैर्य से काँखता हुआ और धीरे-धीरे ढेंकी की चाल गाँव की तरफ़ चला।

दरवाज़े पहुँचा ही था कि ज़मींदार साहब और कुछ सिपाही मिले।

"क्यों रे," गरजकर जमींदार साहब ने पूछा—"चरना को देखा है ?"

और जोर से काँखकर, देर तक यक्ष्मा की खाँसी खाँसकर, बुधुआ ने जवाब दिया कि कल से उसने चरण को नहीं देखा। और जमींदार तथा सिपाहियों को संभ्रम-सलाम कर घर का रास्ता लिया। उसकी मार से जमींदार साहब दिल से घबराए हुए थे कि स्वामीजी कहीं उसे लेकर खड़ा न कर दें। इसलिये

उसे एक ऐसे काम से रखना चाहा कि तमाम दिन फ़ुरसत न हो, और मेहनत भी न पड़े।

सोचकर उन्होंने कहा—"बुद्धू, एक काम तो करो।"

डरकर बुधुआ रुक गया। त्रस्त आँखों से देखने लगा।

"तुम जरा हमारे गाँव तक चले जाओ; काम और कुछ नहीं, यह लो, बीमार हो, इसलिये चार आने तुम्हें मजदूरी देते हैं। लल्ला बीमार है, यह चिट्ठी लल्ला के मामा को दे देना, इसमें दवा देने का हाल लिखा है, वह पढ़ लेंगे। बस, इतना ही काम है।"

बुधुआ घबराया। मार से बचने के लिये इनकार न किया। चिट्ठी माँगी। जमींदार ने जेब से चुटका निकालकर लिखा, और कहा—"लौटकर डेरे में पैसे ले लेना।"

"अभी चले जाओ बुद्धू।" स्नेह-शब्दों में कहकर जमींदार दूसरी तरफ़ आदमियों की तलाश में गए। सिपाहियों को बुधुआ ने इतना कहते सुना—"कहिए साहब, न मिले तो जायँ, अब डिप्टी साहब आ गए होंगे।"

बुधुआ समझ गया। चिट्ठी लेकर वह जमींदार साहब के गाँव के बहाने सीधे स्वामीजी के पास फिर पहुँचा। बुधुआ वग़ैरह के आने के बाद कुछ लोग और वहाँ नहाने के लिये गए थे, और दूध-घी की चर्चा की थी कि मुफ्त की गुनहगारी पड़ती है। स्वामीजी ने सबको देने से मना कर दिया था। लड़के छूट-कर लौट रहे थे, आपस में बातचीत कर रहे थे, बुधुआ ने सुना।

स्वामीजी को वह चिट्ठी देते हुए उसने कहा—"मुझे यह चिट्ठी घर पहुँचाने के लिये दी है।" कुछ संदेह में आ विजय चिट्ठी पढ़ने लगा। लिखा था, इसे शाम तक खिला-पिलाकर बहला रखना, छोड़ना हरगिज़ नहीं।

पढ़कर, मुस्किराकर विजय ने चिट्ठी रख ली, और कहा—"यहीं रहो बुद्धू, तुम्हें जाना न होगा, देखो, भोजन पक जाय, तो यहीं खा लो, फिर सीधे डिप्टी साहब के पड़ाव को चलें। चरण वग़ैरह को जानते हो, कहाँ हैं?"

"हाँ, यहीं नाले में बैठे होंगे।"

"नाले में?"

"हाँ।"

"नाले में क्यों?"

"घर जायँ, तो मारे न जायँगे? डरकर छिपे हैं।"

"तो ज़िंदगी-भर छिपे रहेंगे? जब निकलेंगे, तब न पिटेंगे? तुम जानते हो, तो उन्हें बुला लाओ।"

बुधुआ नाले की तरफ़ चला। विजय स्नान कर भोजन पकाने लगा। चौका-बर्तन गाँव का कहार कर जाता है।

नाले में बैठे हुए लोग उचक-उचककर देखते थे कि कोई आता तो नहीं। बुधुआ को देखकर चरण उठकर खड़ा हो गया। आँखों में शंका भरी हुई। सोच रहा था, घर में तो नहीं घुस गए।

पास जा बुधुआ ने कहा—'स्वामीजी सबको बुलाते हैं।

ज़िमींदार ने हमें अपने घर भेजा था, स्वामीजी ने रोक लिया। अब देख, आज क्या गुल खिलता है।"

एक-एक छक्कन, पलटू, मधुआ वग़ैरह नाले से निकले, और बुधुआ के साथ स्वामीजी के पास चले।

बड़ी देर तक ज़मींदार के पीछे-पीछे घूमकर, हैरान होकर, दस बजे के बाद, सिपाही लोग ज़मींदार को कलेक्टर साहब के सामने याद करने का न्योता देकर चले गए। गाँव में ऐसा स्वागत था कि कहीं भी दरवाज़ा खुला नहीं मिला।

( १० )

दोबारा हृदय को बल मिलने पर सब लोग गाँव गए, और भोजन-पान समाप्त कर दोपहर को स्वामीजी के पास लौट आए। गाँव में कोई उपद्रव नहीं हुआ। जमींदार साहब से नहीं मिले।

दोपहर कुछ ढलने पर सबको लेकर विजय डिप्टी साहब के पड़ाव को चला। कुछ ही दूर पर। उनका खीमा था। नजदीक जाकर देखा, हाल के पकड़े हुए चोर की तरह जमींदार साहब सिपाहियों के बीच में खड़े किए हुए थे। अभी तक डिप्टी साहब ने उनसे कोई कैफ़ियत नहीं तलब की। वह दस बजे ख़ीमे के भीतर गए हुए अभी तक बाहर नहीं निकले। चपरासी इधर-उधर बातचीत कर रहे थे—"भूखों मार डाला साले ने, जी चाहता है, गोली मार दें।

कोई-कोई आवाज विजय के कानों तक गूँज जाती है। उसने निश्चय किया कि आज आप लोगों को फलाहार-रूप सूक्ष्म भोजन के अतिरिक्त माल-मलाई की शायद विशेष सुविधा नहीं प्राप्त हुई, गर्म तवों पर घी न पड़कर एक-एक बूँद पानी पड़ रहा है, जिससे यह छनकार आ रही है, और चतुर्दिक् धूमायमान है। पटवारी एक बार ज़मींदार को सर उठाकर

देख लेता है, फिर अपने काग़ज़ात में पहले से अधिक दत्त-चित्त हो जाता है। गाँव के लोगों के जाने पर उसे जीवन में पहलेपहल अद्भुत प्रकार का भय हुआ। जमींदार साहब तो बुधुआ को देखकर अधमरे हो गए, और और लोग जितने थे, उन सबसे भी आज के अभियोग का तअल्लुक़ है, भविष्य पर विचार कर जमींदार साहब का थूक सूख गया। जितनी गुंजाइश झूठ कहने की थी, जाती रही।

एक महुए के पेड़ के नीचे विजय लोगों को उनका ख़ास-ख़ास पाठ समझाने लगा, और पूरा भरोसा देकर कहा कि वे भय न करें। जो डरता है, उसकी बात बिगड़े बग़ैर नहीं रहती। जिसके दिल में जो कुछ है, साफ़-साफ़ डिप्टी साहब से कहे। इसके लिये पहले बुधुआ को ही उसने ठीक किया, और समझा दिया कि सब लोग साथ रहेंगे, साहब के पूछने पर गवाही ज़रूर दें कि उनके सामने वह पीटा गया। बुधुआ से कह दिया कि मुक़द्दमा चलाने के लिये कहें, तो कह देना—"साहब, मेरे पास मुक़द्दमा चलाने को रुपया होता, तो लगान ही वाले दो न चुका देता, इतनी मार क्यों खाता?"

और-और लोगों को भी उनकी मार्मिक बातें समझाकर निडर कहने के लिये भेज दिया कि साहब के निकलते ही सब लोग बढ़कर लंबी दंडवत् करना, और बुधुआ को अपनी राम-कहानी कह लेने देना। विजय उसी पेड़ के नीचे बैठा रहा।

दौरे में हाकिमों को प्रायः मौक़ा देखना पड़ता है। यहाँ भी

एक ऐसा ही मामला था। सरहद्द के दूसरे गाँव के जमींदार ने एक बाग़ बेदख़ल करने की अर्ज़ी दी थी। उनके हिसाब से बाग़ बंजर था और लावारिस। बाग़ के स्वामी स्वर्ग सिधार गए थे। तीन और हक़दार खड़े हुए। दो दूर के भैयाचार, जिन्होंने बाग़ के अधिकारी के साथ मरने से पहले तक तअल्लुक़ नहीं रक्खा, मरने के बाद दोनों ने सर घुटाकर क्रिया-कर्म कर डाला, और कई महीने हो चुकने पर भी लोखर और लोटा लेकर अदालत पेश होते थे ; तीसरा हक़दार उस मृत मनुष्य का नाती, लड़की का दूध-पीता लड़का था। पर वह लड़की उसी बाग़ के अधिकारी रामनाथ सुकुल की है, अदालत में इसका पूर्ण प्रमाणाभाव था। मृत रामनाथ के भैयाचार, जमींदार और पटवारी हाकिम के पूछने पर इनकार कर गए थे कि वह रामनाथ की लड़की थी। रामनाथ के कोई लड़की थी, यह भी किसी को मालूम न था। क्योंकि रामनाथ के जीवन-काल तक कभी किसी लड़की को किसी ने नहीं देखा। भँवर में चक्कर खा एक तरफ़ को झुकी हुई अब डूबी तब डूबी नाव के सवारों की रामनाथ की युवती कन्या और युवक दामाद की दशा थी। मछुए के बृहत् जाल में-जैसे गाँव की सभी मछलियों को जमींदार ने अपनी तरफ़, अपनी पकड़ में, अपने ही दया-वारि के वश कर रक्खा था। दूसरे जमींदार अपने किसी दूसरे जमींदार भाई के ऐसे मामलात में दस्तंदाज़ी नहीं करते, न अपनी रियाया द्वारा होने देते हैं। अभिप्राय यह

कि कन्या और दामाद सब तरफ़ से निराश हो चुके थे। महुए के नीचे कुछ आदमियों को देखकर पति को लेकर रामनाथ की लड़की उधर ही चली। गोद में उसका बच्चा मुरझा रहा था। मा के कपोलों पर आँसुओं के कई सूखे तार लुप्त-जल भरे हुए नदी-पथों का प्राचीन प्रवाह सूचित कर रहे थे। बड़ी चेष्टा करने पर भी, दुधमुँहे बच्चे को उसकी जीविका से जीवन दे, गाँव की कन्या और गौ पर कृपा करने की बार-बार प्रार्थना करने पर भी, जल में रहकर मगर से वैर करनेवाला कोई भी न निकला। रामनाथ की कन्या गाँव या बिलकुल पड़ोस में परिचय का प्रमाण न पा हताश हो चुकी थी। पर मनुष्य की आशा बड़ी अद्भुत है। महुए के नीचे कुछ आदमियों को देखकर पुनश्च कुछ आश्वस्त हो बढ़ी।

"भैया!" विजय को लक्ष्य कर पूछा—"तुम इसी गाँव में रहते हो?"

"हाँ, क्यों?"

युवती अपना हाल कह गई। विजय ने अपने आदमियों से पूछा।

जगतू ने कहा—"यह सरजू बुआ हैं, रामनाथ दादा की बिटिया, वह उनकी बाग़ है, आम बीनने आती थीं, जब व्याह नहीं हुआ था, हम लोग आम छीनकर खाते थे, और रुलाते थे · क्यों बुआ, है याद?"

बुआ के आँसुओं से सूखे, चर्राए कपोलों पर, दुःख के

समय भी, बाल्य की एक सुखकर स्मृति से, लाज-विजड़ित मंद सहृदय हँसी चक्राकृति फैल गई।

विजय ने कहा—"आप निश्चिंत रहें, जरूरत पड़ने पर आप जगतू तथा और दो आदमियों को शिनाख्त के लिये ले जायँ। यह भी कह दें कि गाँव जमींदार का है, गाँव से गवाह नहीं मिल सके, लोग जमींदार से दबते हैं। हाकिम को विश्वास हो जायगा। जरूरत पर ज़बानी कहला दें। अगर आज फ़ैसला न हुआ, तो ये दूसरी जगह भी नामज़द होकर गवाही दे आवेंगे। पर हाकिम को विश्वास है, जान पड़ता है, इसीलिये मैयाचारों की हिम्मत और मैयाचारी वह देख रहे थे कि लड़की के संबंध में क्या कहते हैं, अब आपका लड़की होना साबित होते ही उन सबका मुक़द्दमा हारेगा, और बाग़ बेदख़ल होने लायक़, हैसियत से गिरा हुआ नहीं, यह तो हाकिम ख़ुद मौक़ा देखकर समझ जायँगे—बाग़ ख़ूब भरा है न ?"

"भरा ? स्वामीजी, पंद्रह से कम भेड़िए न निकलेंगे, और आम, महुए, जामुन, खीरनी, बेर, इमली, कैथे, पीपल, पकरिया, इनके अलावा हज़ारों झाड़ और चारो ओर से कटीली झाड़ियों का घेरा, बाग़ है, पूरा बन ! वह देखिए, बेनई देख पड़ती है।" जगतू ने उँगली उठाकर बाग़ दिखलाया।

बुधुआ इन बातों से दूर पूरी एकाग्रता से साहब के निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। मन-ही-मन वह कितने बड़े प्रतिशोध के लिये तैयार !—ऐसा मौक़ा उसे कभी नहीं मिला।

आज जमींदार साहब से आँखें मिलाते हुए वह बिलकुल नहीं डरता। वह निर्दोष है, फिर भी उसके हृदय ने कितने बार एकांत में अपने दुर्बल तार भंकृत कर-कर शक्तिमानों से उसे निरस्त रहने की सलाह दी है, यह सब स्मरण, सब दौर्बल्य एकत्र हो, वाष्प के मेघों की तरह पूर्ण प्राबल्य से सूर्य को घेर-कर उसे समझा देना चाहता है कि तपन के विरोध में सिक्त करने की वह कितनी शक्ति रखता है।

डिप्टी साहब को मौक़ा देखने के लिये जाना था। जमींदार साहब ने किस प्रकार स्वागत किया था, इसका प्रमाण भी उन्हें दूसरे दिनों की तुलना में आज का भोजन दे चुका था। जमींदार से वह नाराज़ थे, इसलिये कि दाम देने पर भी वह सामान नहीं जुटा सका। अवश्य दाम का कहीं नाम तक नहीं लिया गया। दाम की आशा होती, तो माल आशा से कुछ अधिक मिलता। पर कर्मचारी लोग जहाँ आँख दिखाकर धर्म-पालन करा लेते हैं, और दाम, खर्च की तालिका पेश कर, अपनी जेब में रखते या आपस में बाँट लेते हैं, वहाँ दाम के संबंध में वे इतने उदार क्यों होने लगे, फिर जब जमींदार स्वयं उनका खर्च चलाते हों। कर्मचारियों की तरह जमींदार भी फ़ायदे में रहते हैं। माल उनके घर से नहीं जाता। वह सिर्फ़ आठ-दस सेर आटा और डेढ़-दो सेर दाल घर से मँगवा देते हैं। बाक़ी सबज़ी, घी, दूध, मिट्टी के बर्तन और गड़रियों के बकरे तक रियाया से लेकर देते हैं। मुनाफ़ा यह होता है कि कर्मचारियों

से उनकी पहचान बढ़ती, अदालत में काम निकलता है। इसीलिये, डिप्टी साहब के आने पर, सिपाहियों के साथ आजकल के सुशासन के तौर पर कलेक्टर साहब का अतिरंजित प्रचार और प्रजा की श्रद्धा की जगह भय मुद्रित कर टेढ़ी उँगलियों घृत निकालने की कहावत चरितार्थ करते हैं।

अब के ऐसा नहीं हो सका। केवल आटा-दाल और एक रुपए का घी और तीन-चार सेर तरकारी दूसरे गाँव से खरीदवाकर भेज दिया था। डेरे के सिपाहियों का दो सेर दूध था, वह दूध चला गया था। इससे डिप्टी साहब और उनके कर्मचारियों को ही पूरा नहीं पड़ा, सिपाही-चपरासियों की बात क्या? पर देवता से गण प्रभाव में बड़े होते हैं, ऐसा शास्त्रकारों ने लिखा है। देवता थोड़े उपचार से प्रसन्न हो सकते हैं, पर उपदेवता बिना बलिदान के बात नहीं करते। डिप्टी साहब के धैर्य के लिये चीजें न मिलने की कैफ़ियत काफ़ी होती, पर सिपाही और चपरासी कभी कैफ़ियत नहीं देखते। उन्होंने कर्मचारियों से सलाह कर साहब से कह दिया कि जमींदार ने दाम देने पर भी कोई मदद नहीं की, उल्टे कहा—"मैं डिप्टी साहब का नौकर हूँ? चीज़ें कहाँ मिलती हैं, चपरासियों को पता नहीं था, कचेहरी का वक़्त हो जाने के कारण वे दूसरे गाँव नहीं जा सके, कमर बाँधकर तैयार हो गए, भूखे खड़े हैं।" डिप्टी साहब को इसके प्रमाण की जरूरत नहीं हुई। क्योंकि ऐसा मुक़दमा अभी तक उनके पास नहीं

आया। जमींदार को बुलवाकर उन्होंने बाहर बैठाल रक्खा। अब निकलकर सरकार क्या होती है, अच्छी तरह याद करा देंगे।

डिप्टी साहब अपने खीमे से निकलकर बीस क़दम बाहर आए थे कि सिपाहियों के रोकने पर भी गिड़गिड़ाता हुआ बुधुआ पैरों पड़ने के लिये ज़मीन पर लंबा होकर एक हाथ से खुली पीठ के बरारे दिखाकर रोने लगा।

डिप्टी साहब को उसकी दशा पर दया आ गई। स्नेह-स्वर से उसे अभय देते हुए रुककर रोने का कारण पूछा, बुधुआ और फफक-फफककर सांत्वना से उच्छ्वसित हो-हो रोने लगा। डिप्टी साहब परीक्षा की दृष्टि से पीठ के बरारे देखते हुए स्वयं बोले, किसी ने मारा है इसे। उस उच्छ्वास से रोते हुए रुक-रुककर बुधुआ ने कहा—"जमींदार कृपानाथ ने दो रुपए बाक़ी लगान के लिये मारा है।"

अब तक विजय तथा और-और लोग, जो अपने-अपने मुक़द्दमे में या दर्शक की हैसियत से गए थे, एकत्र हो गए। कुछ सिपाही जमींदार साहब को घेरे हुए वहीं खड़े थे। धीरे से किसी ने कहा—"हुजूर, जमींदार साहब हैं इसी मिजाज के।"

साहब रुक गए। पटवारी को बुलाया। भय और श्रद्धा के कूबड़ से भार-ग्रस्त केवल सर उठाए ऊँट की चाल दौड़ता हुआ पटवारी आया। साहब ने कहा, इसके जोत की पैदावार पर साल की क्या है, बताओ। सलाम कर पटवारी ने कहा कि साहब की आज्ञा न रहने से पैदावारवाली वही वह नहीं

ले आया, हुकुम हो, तो कल लाकर पेश करे। बुधुआ से साहब ने कहा, तुम जमींदार पर मुक़द्दमा चला सकते हो। जैसा सिखलाया हुआ, बुधुआ ने कहा, हुज़ूर, रुपया होता, तो लगान न चुका देता, मार क्यों खाता?

साहब ने जमींदार को पूछा। बढ़ाकर सिपाहियों ने परिचय करा दिया। कृपानाथ की ज़बान से निकला—"हुज़ूर, ये लोग कांग्रेस में मिले हैं, और एक आदमी वह खड़ा है, तमाम गाँव बिगाड़े हुए है। सारी करामात इसी की है।"

साहब ने विजय की तरफ़ देखा। विजय बढ़ गया। न-जाने क्यों, साहब के मन में विजय के प्रति इज्ज़त पैदा हुई, पूछा—"आप कांग्रेस में हैं?"

"जी नहीं।"

"आप यहाँ के रहनेवाले हैं?"

"जी नहीं।"

"फिर यहाँ क्यों हैं?"

"किसान-लड़कों को पढ़ाना मेरा लक्ष्य है, मैं और कुछ नहीं करता, जो भीख गाँव से बाहर मुफ़्त जाया करती है, उसके दुअन्नी से भी कम में मेरे-जैसे तीन शिक्षकों की गुज़र हो सकती है, केवल भोजन कर ग़रीबों को शिक्षा देना मैंने अपना लक्ष्य कर लिया है।"

साहब ने आपाद-मस्तक विजय को देखा।

"आप संन्यासी हैं?" पूछा।

"जी हाँ, यह काम अब तक संन्यासियों के ही हाथ रहा है, जो कम लेकर ज्यादा देते रहे।"

"आप कहाँ तक पढ़े हैं?"

"मैं बंबई-विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट हूँ।"

डिप्टी साहब नौजवान थे। हाल ही कॉलेज छोड़ा था। तब तक विद्या और विद्यार्थियों की प्रेम-वर्षा शासन-समुद्र में मिश्रित हो लवणाक्त न हुई थी। प्रेम से पास बुला विजय से गाँव के इस उपद्रव का कारण पूछने लगे। विजय ने जमींदार की चिट्ठी निकाली। बुधुआ के हटाने का मार ही कारण है कि साहब के पास प्रमाण न पहुँचे, सुझाया। काट पर डाट ऐसी बैठ रही थी कि साहब बिना विश्वास किए रह नहीं सके। फिर चरण, छक्कन, घसीटा, पलटू आदि को बुलाकर रसद का छिपा रहस्य समझाया। रियाया पर होते हुए ऐसे-ऐसे अत्याचारों का उन्हें बिलकुल ज्ञान न था। जिस विषय में उनके कर्मचारी तक सटे हुए थे, उसका उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया, प्रसंग न उठाया। चिढ़कर जमींदार के लिये आज्ञा दी, इसे हटा दो। सिपाहियों ने ब्याज-समेत वसूल किया, यानी कुछ दूर तक कान पकड़कर घसीटा, फिर धक्के लगाकर रिस बुझाई। विजय से साहब ने कहा—"आपके ऐसे कार्य के लिये मैं हृदय से आपको बधाई देता हूँ, अगर कांग्रेस से आपका तअल्लुक़ नहीं।"

फिर साहब बाग़ की तरफ़ बढ़े। विजय अपने आश्रम की

ओर चला। कुछ आदमी सरजू बुआ की गवाही के लिये रह गए। गवाही हुई, और बाग़ की हैसियत बाग़ लिखकर साहब ने रामनाथ के नाती को ही वह हिस्सा दिया।

गाँवों में चारो तरफ़ किसानों में विजय की जय-वैजयंती फहराने लगी। जिन-जिन गाँवों में अभी तक किसी शिक्षा का प्रसार न हुआ था, वहाँ-वहाँ होना निश्चय हो गया। वहाँ के कई गाँवों का विजय प्रमुख मनुष्य माना जाने लगा। जमींदारों ने रिपोर्टें डरकर न कीं कि डिप्टी साहब की स्वामीजी पर कृपा है, कहीं उल्टा फल न हो। विजय भी अपने निश्चय के अनुसार पूरी ताक़त से शिक्षा के विस्तार पर लगा। उसके पास कुछ ऐसे भी लड़के आने लगे, जिन्होंने पासवाली पाठशाला से चहर्रुम पास किया था। पर अर्थाभाव के कारण मिडिल पास करने तहसीलवाले मदरसे नहीं जा सके।

अलका पिता के सुखकर वृंत पर प्रस्फुट कली-सी कल्पना के समीर से अपनी ही हद में हिल रही है—सरोवर के वक्ष पर फलित एक किरण उसके नवीन जीवन की चपलता। ज्ञान में भी नहीं जानती, जीवन का ऋतुराज तन्वी को कुछ पृथुल कर, उसमें मधु-सुरभि भर, अपलक ज्योति से सजाकर कब दृष्टि से ओझल हो गया—ऐसी सुघर, साँचे में ढली वाणी की वीणा बना गया कि कोई भी मनुष्य उसे देखकर क्षण-भर चकित हो सोचे, ऐसी छवि उम्र-भर कभी नहीं देखी। इतना जादू, जैसे जागरण के बाद स्वप्न-स्मृति सदा पलकों पर—विस्मृति की सलील सलिल-राशि से उठी हुई भूली परी एकाएक रूप में निखरकर सामने खड़ी हो गई हो! प्रातःरश्मि-सी पृथ्वी की पलकें ज्योतिःस्नान करती हुई, मनुष्यों के परिचय को सूक्ष्मतम किरण-तंतुओं से गूँथती हुई, जग के जीवों को एक ही ज्योतिर्मय हार कर! किंशुक के देह की डाल जैसे पुष्पांशुक से ढक गई है! वह स्वयं कोई कारण नहीं खोज पाती—वह इतनी असाधारण क्यों हो गई। पिता के पास कुछ भी ऐसे विलास-वाले उपकरण नहीं, जो अपना भिन्न-भिन्न आभरण-नाम धारण कर, खौलते हुए दूध की तरह उफानों से अपनी विशालता का

परिचय देते रहें, और मनुष्यता के पात्र को ही छापकर छलक जायँ। फिर भी न-जाने वह कौन-सी शक्ति उस साधारण बगीचे की कली को भी बादशाह-ज़ादियों की नज़रवाली कली की तरह उभाड़-उभाड़कर चटकने के लिये विवश कर रही है। प्रति अंग पर कितना उच्छ्वास—कितना हास—कितना विलास! पिता उसके अज्ञान के भीतर से निकलते हुए दार्शनिक सूत्रों का अपूर्व चमत्कार देख, प्रमाण पा, चकित होकर ज्ञान की [illegible] में निर्वाक् बँधे रह जाते हैं, खुलकर उसे कुछ नहीं कह सकते। वह सबको समान स्वातंत्र्य उपभोग के लिये देते आए हैं, यह उनका स्वभाव है. इसलिये अलका के उस विकास पर उन्होंने दबाव नहीं डाला। धीरे-धीरे एक साल पार हो गया, पर विजय की ख़बर न मिली। अलका को ऐसा दिन नहीं जाता, जब एक बार अपने अंतरतम प्रदेश में पिता की आँख बचा चुपचाप अपने अदेख पति से वार्तालाप न करती हो। कितनी शक्ति वह मौन तन्मयता प्रियतम के हृदय में भर देती है, किसी दार्शनिक को क्या मालूम! किस प्रकार बार-बार विजय अपने कार्य के लिये एक अपराजिता प्राणों की पूर्ण शक्ति का प्रवाह प्राप्त करता, जहाँ से वह आती है वहाँ—उस तपस्या, शांति, जीवन की चिर-संगिनी की ओर उसे न फेरकर, दूसरी ओर, लोक-कल्याण के लिये, किस तरह फेरता है, इसकी दार्शनिक व्याख्या करने में कौन समर्थ है? जिस अलका द्वारा अज्ञात इंगितों से विजय को सत्य-प्रेम का यह बल प्राप्त होता है, उसी

अलका को अपने हृदय के अन-कल्पित कलंक-भावना से विजय क्या विष अज्ञात भाव से दे रहा है!—यदि इसका फल अलका के भविष्य-जीवन में विपरीत हो, तो क्या विजय सोच सकता है कि उसे सत्य से असत्य के मार्ग पर ले चलने का सबसे अधिक उत्तरदायित्व विजय का ही था? संसार के किसी भी प्रश्न का यथार्थ उत्तर नहीं मिला; देवता भी उतर-कर नहीं दे सके!

सावित्री पहले दो-तीन महीने तक रही, फिर, बालिकाओं के शिक्षा-क्रम में बाधा पड़ रही होगी, सोचकर गाँव चली गई। पिता और अलका को तकलीफ होने के विचार से एक चतुर दासी देख-रेख के लिये और एक ब्राह्मण भेज दिया। अलका पढ़ रही थी, दैनिक गृह-कर्म उससे कराना उसने अनुचित समझा।

अलका के रहन-सहन में सावित्री के स्वभाव का पूरा प्रभाव पड़ा। ऐसी पढ़ी हुई कुशल विदुषी की तरफ, उसके कार्य-कलाप से अलका का विद्यार्थी मन आप खिंच गया, चुंबक की ओर लोहे की कमजोर सुई की तरह। सावित्री कभी शृंगार नहीं करती, सुहाग का एक भी चिह्न नहीं धारण करती। इस संबंध में एक रोज अलका से उसने कहा था—"सुहाग प्राणों का विषय है, किसी चिह्न का धारण उसे धवल नहीं करता। दागे हुए साँड़ या कंपनी-विशेष के घोड़ों की तरह किसी देवता या पुरुष के नाम चढ़ जाने की मुहर लगा-

कर फिरना स्त्रियों के लिये सम्मान-जनक कदापि नहीं।" सावित्री सेंदुर, टिकली, चूड़ी आदि कभी नहीं पहनती, पर उसके हृदय में अपने पति के प्रति अपार प्रेम है। अलका पर इसका प्रभाव पड़ा। कुछ ही समय में सत्य इसे भी जँचने लगा; बिना किसी भूषण के अलका हलकी रहने लगी, मन पावन चिंतन में स्वस्थ रहा।

स्नेहशंकर अलका को पढ़ाते और साथ लेकर लखनऊ के दर्शनीय स्थान दिखा लाते हैं। नाटक, सिनेमा और कभी-कभी मित्रों के मकान भी अलका साथ जाती है। एक-एक उद्देश्य का सभी को नशा रहता है। पुस्तकें लिखना और अलका को एक बार ज्ञान में प्रतिष्ठित करके देखना, ये ही दो स्नेहशंकर के सम्मिलित उद्देश हैं। कुछ पढ़ी-लिखी अलका पहले से ही थी; अब परिश्रम कर पिता की योग्य उत्तराधिकारिणी होने चली। स्नेहशंकर अँगरेजी भी सामयिक प्रधान भाषा जानकर पढ़ाते थे। नाटक, सिनेमा आदि बहुत-से ऐसे थे, जिनके प्रति स्नेह-शंकर की अपनी कोई प्रेरणा न थी, खासकर हिंदी, उर्दू में तो एक भी नाटक-सिनेमा उन्हें पसंद नहीं आया। वह जैसा चाहते थे, जनता की चाह उससे बहुत पीछे थी। वह केवल दो-तीन घंटे में एक सचित्र पुस्तक पढ़ा बने, सामयिक रुचि की आलोचना कर अलका की दृष्टि को समयानुकूल तथा मार्जित कर लेने के विचार से नाटक, सिनेमा आदि देखने जाते थे।

ज्यों-ज्यों शिक्षा गहन हो चली, त्यों-त्यों अलका के विचारों

में उन्हें फूलों से फल का निश्चय होने लगा। अलका का मन कलरव से अलग, आकाश की तरह, जीव-जग से ऊपर रहने लगा। स्वभाव में गंभीर रहनेवाले अपने अज्ञान को ही ओढ़कर गहन बन जाते हैं, इसकी व्याख्या वह पिता से सुन चुकी थी, और उनके कितने ही मित्रों को मिलते समय ज्ञान-गंभीर बनते देखकर मन-ही-मन हँस चुकी थी। उसकी तमाम क्रीड़ाओं में हृदय से स्वच्छ होठों पर आई मधुर व्रीड़ा पढ़-पढ़कर स्नेहशंकर अपने उद्देश में स्थिर होने लगे।

विचार, वयःक्रम, पिता तथा दीदी की मुहर से प्रतिदिन वह स्पष्टतर छप-छपकर निकलने लगी। बाल्य का खोया चापल्य उस खुले बालोंवाली, नग्न-पद अमल अलका पर, च्युत-राज्य राजा की पुनः अधिकार-प्राप्ति जैसे, प्रतिष्ठित होने लगा। विद्यार्थिनी पर तारुण्य की सभी निर्दोष प्रचलित क्रीड़ा-प्रथाएँ प्रभाव छोड़ अपनी तरफ़ खींचकर लिप्त करने लगीं। टेनिस का गेंद ले, उछालती, दौड़ती, पकड़ती हुई, छत तथा भीतर मकान का आसमान सुखद कलरवों से समुद्वेल करती, हँसती, आँचल उड़ाती हुई, पिता की बगल में हाँफती थककर बैठ जाती है। पिता स्नेह की दृष्टि से देखकर, जनाने उस छोटे-से बगीचे में दौड़कर स्वास्थ्य ठीक रखने को उत्साह देते हैं।

स्नेहशंकर की कुमारी यही अलका कभी भावावेश में विजय की प्यारी मानसिक शोभा बनकर, छत पर, सांध्य सूर्य-किरण

की कृशता देख, उनसे नज़र मिला, जैसे उन्हीं के साथ कहीं, किसी की खोज में, अस्त हो रही हो; शांत, संयत, निष्पात पलकों से निष्पंद खड़ी हुई, केवल शून्य की थाह-सी लेती, कहाँ डूबकर चली जाती है! आँचल सिर से खुलकर गिर गया, बाल उड़-उड़कर गाल, वक्ष पर आ गए, वह उसी अपरिचित ध्यान में तन्मय है! किरणें उससे बिदा होकर चली गईं। धरा को अँधेरे ने उसी के हृदय की तरह ढक लिया, पृथ्वी का ताप आकाश की पलकों से अदृश्य शिशिर के आँसू बन-बनकर प्रतिदान में प्रिया का हृदय सिक्त करने लगा, पर उसे उसके प्रिय की मौन प्रेरणा किस रूप में मिली, वह नहीं जानती। डूबकर शून्य गह्वर से बाहर निकल भीतर हृदय का-जैसा अपने चारो ओर अंधकार देख, धीरे-धीरे छत से नीचे उतर आती है। कभी-कभी, किसी-किसी दिन देर हो जाती है, पिता बुला भेजते हैं, दासी आकर देखती है, अलका छत की चार-दीवार पकड़े चिंता में कहीं अंतर्धान है! दासी हिलाकर बुलाती है, तब, होश में आ, डरकर, नहीं जानती, क्यों अपराध की दृष्टि से पिता को देखती हुई, पलकें झुका, किताब ले पढ़ने बैठती है। स्नेहशंकर हँस देते हैं, अलका का शून्य पवित्र वात्सल्य रस से पूर्ण हो जाता है। पिता मर्म पर दृष्टि रख पूछते हैं, आज तू गंभीर है? अर्थ समझ पुत्री आँसुओं में हँस देती है। दुःख के प्रतिघात से पिता भी दुखी हो जाते हैं, अलका स्वभावतः दुःख से मुक्ति पाती, नत-मस्तक धीरे-धीरे पढ़ने लगती है।

इस प्रकार अपने स्वभाव को बार-बार भूलती, बार-बार याद करती हुई एक साल पार कर गई। पिता उस सरिता की प्रवाह-गति का पूरा परिचय रखते हैं। वह उसे उसी के पति की ओर लिए जा रहे हैं, जहाँ अपार तृप्ति का सागर है, जो उसके पति का बृहत् रूप है, जहाँ चिंता का प्रवाह ही रुक गया है—भोग की इच्छावाले मिलन का दुःख नहीं। वहीं से उसमें उसकी बहनों के लिये सब से बड़ा त्याग कराएँगे—यह उनका आदर्श है, इसी की पूरी तैयारी उनकी शिक्षा। संस्कारोंवाले सुहाग पर कुछ दूर तक सोचकर स्नेहशंकर अभी कुछ नहीं कहते; जानते हैं, यह छोटा, यह दो प्रेमियों का गले-गले लगना अपने महत्त्व में बड़े से छोटा कभी नहीं; केवल वियोग दुःख-प्रद है, इसलिये ज्ञान की दृष्टि से अनित्य।

आज थिएटर जाने की बात है। कलकत्ते का कोरिंथियन-थिएटर उत्तर-भारत का सफर करता हुआ लखनऊ आया है। स्नेहशंकर के मित्र लखनऊ के सहायक डिप्टी-कमिश्नर पं० ज्ञानप्रकाश और उनकी पत्नी भी जायँगी। स्नेहशंकर और ज्ञानप्रकाश की इधर कुछ दिनों से घनिष्ठ मैत्री है, पहले परिचय था। ज्ञानप्रकाश दार्शनिक तो बहुत अच्छे नहीं, पर आर्य-समाजी होने के कारण वैदिक साहित्य पर पूरी भक्ति रखते हैं। वह सिद्ध नहीं कर सकते, पर वेद अपौरुषेय हैं, इस पर उनका विश्वास दृढ़ है। रोज़ हवन करते हैं। एक बार किसी अखबार में लिखा था, आजकल आग में घी फूँकना

बेवक़ूफ़ी है, जब घी खाने को नहीं मिलता। आक्षेप करनेवाली एक लेखिका थी। नाम सावित्री था। इन्हें यह लेख आर्य-धर्म के विरुद्ध मालूम दिया। अपने सिद्धांत की रक्षा के लिये इन्होंने वेद तथा गीता की आवृत्तियों से सिद्ध किया कि मेघ बिना हवन किए जल नहीं बरसा सकते, हवन छोड़कर ही अधिकांश लोग अनार्य हो गए हैं। फिर लेखिका के सावित्री नाम पर भी इन्होंने आक्षेप किए, यद्यपि सरकारी नौकरी के मैदान में वाद-विवाद पर इतना बढ़ना हानिकारक था। बात यहीं से नहीं खत्म हुई। लेखिका सावित्री ने युक्तियों और प्रमाणों की पुट दे-देकर हवन करना सोलहो आने बेवक़ूफ़ी फिर साबित किया। लिखा—'सूर्य द्वारा समुद्र के विशाल कुंड से अविरत जल जला-जलाकर जो प्रकृति पानी बरसाती है, वह नकलचियों के घृत हवन की अपेक्षा नहीं करती। जहाँ मनों घी बेवक़ूफ़ी में जलता हो, वहाँ आर्य निस्सं-देह-अनार्य हो गए हैं। वह घी और यव ग़रीबों के पेट के अग्नि-कुंड में जलकर उनकी नसों में रक्त तथा जीवनी शक्ति संचित करके ही यज्ञ की सर्वोच्च व्याख्या से सार्थक होगा। जहाँ लाखों टन जले कोयले का धुआँ वायुमंडल में ज़हर भर रहा हो, वहाँ मामूली संख्या के आर्य-समाजी तोले-तोले घी फूँककर वायु-मंडल शुद्ध कर देंगे! प्रकृति ने इसे पवित्र करने के कार्य में पहले से हवा को लगा रक्खा है। वह बह-बहकर धुएँ का ज़हर जल की धारा की तरह फटकारती, साफ़ करती रहती है—" आदि-आदि। जवाब देखकर डिप्टी-कमिश्नर साहब

का रंग उड़ गया। बात लाजवाब थी। पर स्वामीजी, जिन्होंने डूबते हुए देश के हाथों वए की तरह वेदों को रक्खा, हवन करने को आवाहन किया, वह बगैर गहरे पैठे, मतलब समझे ही ऐसा करने को कह गए हैं, उनके तेजस्वी मन को विश्वास न हुआ। उन दिनों स्नेहशंकर लखनऊ में ही रहते थे। इनके पास इस लेख का उचित उत्तर लिखवाने आए। डिप्टी-कमिश्नर साहब को इनके ज्ञान पर पूरा विश्वास था। लेख और नाम देखकर स्नेहशंकर हँसे। कमिश्नर साहब से कहा—"यह तो घर ही की बहू है।" परिचय दिया। कहा—"आपने ठीक लिखा है; ऋषियों ने इन कर्मों का प्रतिपादन बड़े-बड़े ज्ञान के आश्रय से किया है।" कमिश्नर साहब प्रसन्न हो, मार्मिक उच्छ्वसित आँखों से देखकर बोले—"वही तो मैंने कहा, बिलकुल तख़्ता उलट देना चाहती है! लेकिन आपके घर में नास्तिक—और स्त्री!" "कुछ नहीं, लड़कपन है।" स्नेहशंकर मुस्किराए, बोले—"आपसे क्या कहूँ? आप ऐसी आलोचना का उत्तर ही न दें, उपेक्षा कर जायँ।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रसन्न होकर चले गए। अलका बैठी हुई आँखें नीची किए मुस्किरा रही थी। उनके चले जाने पर पिता से पूछा—"आपने इन्हें कैसी सलाह दी?" "यह तो दुनिया है।" स्नेहशंकर बोले—"जो जैसी ख़ूराक का आदी है, वह वैसी ही ख़ूराक पाने पर प्रसन्न होता है। इनका जिधर रुख था, उधर हमने इन्हें चार क़दम बढ़ा दिया; अब मज़े में

पाव-भर घी हवन-कुंड में रोज फूँककर ग़रीबों के मुँह राख झोंकते रहें !" साश्चर्य अलका अपने अद्भुत पिता की ओर ताकती रह गई।

दूसरे दिन अलका को साथ लेकर स्नेहशंकर भी डिप्टी-कमिश्नर साहब के घर गए। इस तरह आना-जाना लगा रहा। आज थिएटर जाने का निश्चय था। पहले से चार सीटें रिज़र्व करा ली गई थीं। शाम का भोजन समाप्त करके डिप्टी-कमिश्नर साहब अपनी धर्म पत्नी के साथ स्नेहशंकर और अलका को ले जाने के लिये ख़ूब सजकर आए। ये तैयार थे। सब लोग बैठ गए।

---

( १२ )

ठीक नौ बजने पर तमाशा शुरू होगा। स्नेहशंकर और ज्ञानप्रकाश के बीच, आर्चेस्ट्रा में, ज्ञानप्रकाश की पत्नी और अलका बैठ गईं ; पत्नी पति की तरफ़, अलका पिता की तरफ़। हॉल ऐसा भरा, जैसे रेत पर सटे बगले बैठे हों। नव्वाबी सभ्यता के सूक्ष्मतम, तंतुओं-सी देहवाले, तहज़ीब के रूपक, लखनऊ के रईस, राजे, तअल्लुक़दार और देशी अफ़सर, कोई-कोई अपनी महिलाओं के साथ, सामनेवाली सीटें आबाद किए शान से गर्दन उठाए बैठे हुए हैं। कोई-कोई सफ़ेदपोश बड़ी-बड़ी आँखोंवाली अलका को बड़ी तन्मयता से देख रहे हैं।

खेल सामाजिक है। नाम है 'सच्चा प्यार'। समय पर ड्राप उठा। खेल शुरू हो गया। रोशनी में एक साथ हाथ मिला गुच्छों में खिली चपल कलियों-सी परियाँ लोगों की अपल आँखों में खिंच गईं। विद्या की अगम चारदीवार के अंदर न आने पर भी संगीत और शायरी के रसज्ञ रईस फड़क उठे।

दर्शकों में साश्चर्य उत्साह भर-भरकर नाटक होने लगा। एक राजा शिकार खेलने को चले। नेपथ्य में घोड़ों की टापों का रूपक कर स्टेज भड़भड़ाया गया, आवाज़-पर-आवाज़ें आने लगीं—"सब लोग होशियार हो जाओ, तूफ़ान उठ रहा है,

ओफ्, ओले गिर रहे हैं !" फिर किसी ने तार-स्वर से पुकारा—"महाराज, अरे ! हमारे महाराज कहाँ ?" फिर समझाया गया, शायद उनका घोड़ा बहक गया है ! फिर दूसरे दृश्य में, राजा एक झोपड़ी के भीतर ओले के स्वर्गीय प्रहार से घायल, चारपाई पर पड़े कराह रहे हैं ; एक सुंदरी युवती कृषक-कुमारी उनकी शुश्रूषा कर रही है ।

स्टेज के और-और लोग इस समय पूरे एकाग्र हैं ; पर पिता से अलका ने शंका की; इन राजा के साथियों को क्या हुआ होगा पिता ?

हँसकर स्नेहशंकर बोले—"संभव, वे बच गए हों, राज्य में खबर देने के लिये देखो ।"

किसान-युवती अपने छोटे भाई के साथ अकेली है । उसके पिता और भाई अपर पड़ोसियों के साथ तीर्थ करने गए हैं । राजा अच्छे होकर उसके प्रेम के पाश में फँस गए ।

अलका ने फिर पूछा—"क्या इनकी शादी अभी हुई नहीं ?"

"दुष्यंत की तरह, बहुत मुमकिन्, हुई हो ।" स्नेहशंकर प्रसन्न व्यंग्य से बोले । लोग अत्यंत एकाग्र होकर यह प्रेम-लीला देख रहे हैं । राजा ने ईश्वर-साक्षी कर गांधर्व रीति से किसान-युवती का पाणि-ग्रहण किया । दर्शक शृंगार के मंत्र से मुग्ध हो गए । अलका चुपचाप, राजनीति के समालोचक की तरह, अपनी पूर्व-कृत भविष्य-चिंता के निश्चित फल की ओर लक्ष्य किए हुए है ।

वैसा ही हुआ। राजा के साथी बाल-बाल बचकर राज-भवन पहुँच गए। राजमाता, रानी तथा मंत्री को राजा के गायब होने की खबर हुई। राजमाता मूर्च्छित हो गईं, रानी आठ-आठ आँसू रोने लगीं। राजा की त्वरित तलाश के लिये मंत्री ने चराचर चर भेज दिए।

उस कृषक-युवती के प्रेम में राजा ऐसे फँसे कि निकलना दुश्वार हो गया। इतनी भी खबर नहीं कि उस प्रेयसी से अपने विवाहित होने की, अपनी रानी की एक बार बातचीत करते। अवश्य यह सौत का ज़िक्र शास्त्रानुसार वर्जित है, और कुछ हिंदू और मुसलमानों में जो राजा के लिये इच्छानुसार वर बनते रहने की स्वतंत्रता वरण किए बैठे थे, यह भी प्राचीन संस्कारों का शुभ धर्म था, इसीलिये उनके इस शृंगार-रस में दुर्भावना की मक्खी नहीं पड़ी। अलका को सबसे बड़ा तअज्जुब बचपन में सुनी एक दंत-कथा का प्रमाण मिलने पर हुआ कि सचमुच राजा प्रेम के जादूवाले बंगाले में मनुष्य से ऐसे भेड़ बने कि किसान-युवती अपनी हद के खूँटों में इच्छानुसार उन्हें छोरने-बाँधने लगी। बेचारे पशु की जबान, आदमी की तरह सच्चा हाल कैसे बयान करती!—अलका अब ऐसा सोच लेती है।

एक रोज़ पास ही की नदी में यह नई युवती स्नान करने गई। राजा उसके घर में रक्खे हुए हैं। ऐसे समय एक चर व्याघ्र की तरह घाण-मात्र से राजा का निश्चय कर भीतर

झाँकता है। देखकर प्रसन्न हो पास जाता और राज्य के दुःख कहता है। एक साथ राजा ऐसे आवेश में आते हैं कि अपने देश को इतने दिन भूले रहने के लिये अपने को धिक्कार देते हुए उसी वक्त चर के साथ घर चले जाते हैं। युवती स्नान कर लौटती और राजा को न देख व्याकुल होकर रोती रहती है।

युवती का छोटा भाई ढोर चराकर लौटा, और बहन को उदास बैठी हुई, सजल-दृग आकाश देखती हुई देखकर पति से उसे मिला देने की प्रतिज्ञा की; इतने छोटे मुँह इतनी बड़ी-बड़ी बातें सुनकर एक तरह रंगस्थल के सभी दर्शक 'असंभव' को प्रकृति से निकाल देने के पक्ष में नेपोलियन बन गए, जैसे प्रश्न-कथा के दुर्गम अंधकार में, सत्य-रत्न के बिना भी, प्रकाश पाने के वे आदी हो गए हैं।

कुछ दिनों बाद उसके पिता और भाई पड़ोसियों के साथ लौटे, और अन्य स्त्रियों से सुना कि कन्या किसी नवागत पुरुष से प्रणय कर गर्भवती हो गई है। पिता ने पुत्री और एक धर्म-पत्नी के सम्मान के प्रतिकूल अनेक कटु शब्द कहे, जिससे उसी रात पिता का आश्रय छोड़कर पति के पथ में निरुद्देश हो गई।

अलका अपनी पूरी शक्तियों से एकाग्र है। सहानुभूति के स्रोत से उसकी समालोचना के घाट की जंजीर हाथ से छूट गई। पिता रह-रहकर एक नजर यह बदला हुआ मनोभाव देख लेते हैं। चलते-चलते तेज धूप से प्यासी एक आशय देख-कर बैठ गई, उत्पल-कुसुमांगी, जीवन के सांध्य क्षण में छिन्नदल

लोचन मूँद लिए, फिर वहीं पृथ्वी की शून्य गोद में निस्तब्ध-लता-सी मूर्च्छिता हो गई।

वहाँ एक महात्मा की कुटी थी। बाहर आ इस सीता को धूलि-धूसरिता अवलुंठिता देखकर दयार्द्र हो, जल-सेक कर होश में लाए, और समस्त कारण अवगत हो प्रज्ञा-शक्ति से उसके जीवन के भविष्य-पट-चित्र प्रत्यक्ष करने लगे; पुनः दर्शकों पर भाग्य के अखंडन आलेख्य का प्रभाव छोड़ते हुए तार-स्वर से स्वगत बोले—"एक पतिव्रता को गत जन्म में पतिवंचिता करने के अपराध में सीता की तरह इसे चिरपति-विरह सहना होगा।"

त्वरित अपनी आलोचक-स्थिति में आ अलका मन की जबान से कह गई—"हश! सफ़ेद झूठ, यह लेखक की चालबाज़ी है! यह नीच-कुल की है, इसलिये साधारण जनों की दृष्टि में पत्नी-रूप से इसे न मिलने देगा।" मन के दाँत पीसकर रह गई। स्नेहशंकर ने उसकी मुद्रा की ओर फिर देखा।

फिर महात्माजी ने तीन दिन ऐसी तीव्र तपस्या की कि उसके पति महाराजाधिराज को मृगया के लिये सामंत-सरदारों के साथ उस तपोवन की तरफ़ आना ही पड़ा। ऋषिराज ने उस युवती को महाराज से अपनी दुःख-कथा कहने के लिये कहा। अनेक सभ्यों के साथ महाराज को देखकर उस युवती ने उन्हें पहचानकर भी अपने पति-रूप से परिचित

न किया, सोचा, पति की इज्जत रखना ही पत्नी का धर्म है।

अलका बिलकुल न समझ सकी कि यह कौन-सा पत्नी-धर्म हो सकता है। जनता गद्गद कंठ से साधु-साधु कहने लगी। पुरुष की जहाँ इतनी महत्ता बढ़ रही हो, वहाँ पुरुष-जाति प्रसन्न हुए बिना कैसे रह सकती है, अलका सोचने लगी; पर पर्दे की स्त्रियों की क्या हालत होगी? क्या वे भी ऐसे कार्य को आदर्श सोचती होंगी? श्रीमती डिप्टी-कमिश्नर की राय के बिना उसकी चपलता न रुक सकी; पूछा—"यहाँ आपको कैसा लग रहा है?" "बहुत ऊँचा आदर्श है, बहुत अच्छा दर्शाया है।" यह उत्तर पा आहत हो, विरोध की आँखों से एक बार देखकर अलका चुप हो गई।

पत्नी ने तो तत्काल पहचान लिया, पर पति उत्कल महाराज की कमल-आँखों पर उस पूर्व-जन्म के शाप की छाप जो पड़ी, वह किसी तरह भी भले-चंगे मनुष्य होकर न पहचान सके। बार-बार, बड़े सहृदय-भाव से, अच्छी तरह देखते हुए, पूछा—"तुम उस दुराचारी पति का नाम जाहिर कर दो, मैं उसे दंड दूँगा।" पत्नी ने कहा—"वह एक राजा है।" पर राजा होश में न आए। महात्माजी सच्चे वाल्मीकि थे नहीं, न नाटक के लेखक महोदय ही वाल्मीकि के ऋषित्व से परिचित; दुखी जनों का राजा ही पोषक है, अतः महाराज यह शिकार कर अपने यहाँ परवरिश के लिये ले चले। रास्ते में इत्तिफ़ाक़ से उसका

वही छोटा भाई बहन के निकल जाने पर उसे पति से मिलाने के लिये घर छोड़कर निकला हुआ आ मिला। वह राजा को पहचानकर उसी ताव में बातें करने लगा, जैसी उसके घर की स्थिति थी। उसे राजा साहब ने पहचाना, तब युवती का मुख भी याद आया। युवती को साथ लेकर कुछ लोग आगे थे, उसके भाई ने अपनी बहन को नहीं देखा, न राजा ने दिखाने की जरूरत समझी। बल्कि लेखक महोदय की कृपा से ऐसा किया कि साथवाले अपर लोगों को भी बिदा कर दिया; फिर एकांत में कृषक-कुमार से करुणा-क्रंदन करने लगे कि उन्हें विस्मरण हो गया था। लेकिन फिर भी उससे उसकी बहन का हाल न कहा कि वह आगे साथ ही चल रही है। फिर पर्दा गिरा और मामला खतम। फिर कौन पूछता है कि किसान-कुमार कहाँ गया ?

राजधानी में कृषक-किशोरी अस्तबल से होड़ करनेवाली कबूतर के दर्बा-सी बनी हुई आवारागर्द औरतों की एक साधारण खोली में लाकर रक्खी गई। आधी रात को पूरे छद्म-वेश में महाराज वहाँ तशरीफ़ ले गए। फिर क्षुरधार प्रणय की बाढ़ में ऐसा बहे कि लोगों पर पूरा प्रभाव पड़ गया, और अलका के छक्के छुट गए। वह किशोरी स्त्री प्राण रहने तक पति की मर्यादा अक्षुण्ण रक्खेगी, यह पण किया। सुनकर, महान् पातिव्रत के आदर्श-ज्ञान से पुलकित जनता ने पलकें मूँद लीं, और आहें भरने लगी। महाराज भी पूरा प्रेम जता, अपना फ़र्ज़ अदा कर, बड़े दुःखित भाव से

धीरे-धीरे चले गए। सुबह होने पर किशोरी धर्माधिकरण लाई गई, और पति का नाम न बतलाने पर कलंकिनी क़रार दी गई। कलंक का एक निशान सूक्ष्माग्र जले लोह से लगाया गया, और उसी अस्तबल में लाकर डाल दी गई।

उसके लड़का पैदा हुआ, राजकुमार। पर क़िस्मत अस्तबल के साईसों के लड़कों से बदतर। महाराज ने फिर कभी उधर नज़र नहीं की। लड़का पेट में था, इसलिये लेखक को निकालना ही पड़ा। यदि आदर्शवादी कला को पेट से बच्चा उड़ाने का कोई कौशल हासिल होता, तो हिंदी के नाटक-उपन्यास-सम्राट् ऐसे समय ज़रूर इसका प्रदर्शन करते। लाचार, बच्चा हुआ, और कुछ दिनों बाद स्वर्ग सिधार गया। नाटक में पहली रानी के कोई पुत्र नहीं। फिर भी इस बच्चे पर रहम न हुआ। फिर माता पागल हुई, वेश्या का आश्रय ग्रहण किया, गाना-बजाना सीखा और अंत में महाराज की महफ़िल में नाचकर, उन्हें अपने प्राचीन परिचय के प्रेम से मकान तक खींचकर, बीमार हो, भाई द्वारा जनता की आँखों राज-परिणय का भेद खुलने के पश्चात्, राजा, पति या उपपति की गोद में मरी। उसका एक स्मारक ताजमहल की तरह महाराज ने तैयार कराया, और ऐसी प्रेम की मूर्ति पर मृत्यु के बाद रोज़ पुष्पांजलि अर्पित करने लगे।

दर्शकों के हर्षातिरेक से अभिनय समाप्त हुआ। स्नेह-शंकर ने देखा, अलका के अपांगों में नफ़रत खिंच रही है।

डिप्टी-कमिश्नर के साथ सब लोग उठकर बाहर आए।

किसी ने लक्ष्य नहीं किया, एक दूसरा युवक शुरू से आखीर तक अलका को देखता रहा।

मोटर लगी हुई थी। सब लोग बैठ गए। पहले स्नेहशंकर के मकान मोटर गई। पिता-पुत्री उतर गए। एक दूसरी मोटर शीघ्र निकल गई।

डिप्टी-कमिश्नर घर गए। रास्ते में उनकी पत्नी ने कहा—"लड़की कैसी भोली और सुंदर है! बरबस जी का प्यार हर लेती है।"

डिप्टी-कमिश्नर निःसंतान हैं। कहा—"हाँ, हमारी तबियत भी उसे देखकर बहुत खुश होती है। मुँह पर किसी भी प्रकार का छल-कपट नहीं।"

"एक जगह शायद मतलब समझ में नहीं आया, लड़की ही तो ठहरी, मुझसे पूछा, मैंने समझाया, क्योंकि ऊँचा भाव था।" आत्म-प्रसाद का स्वाद लेते हुए पत्नी ने कहा—"तुम कहो न, स्नेहशंकरजी यह लड़की हमें दे दें।"

"इच्छा तो हमारी भी होती है। ऐसा देखती है, जैसे अपनी लड़की हो। अच्छा, कल कहेंगे। वह जैसे सज्जन हैं, उनसे हमारी इच्छा पूरी होगी, ऐसी आशा है।"

अजित मामा के यहाँ न गया। उसे पकड़ जाने, शोहरत होने पर घर ख़बर पहुँचने का ख़ौफ़ हुआ। कुछ पुलीस से भी डरा, जिसकी आँख में धूल झोंककर यह बाना बनाया था। सीधे विजय की ससुराल पहुँचा। लालगंज में गीता की किताब ख़रीद ली; अँगरेज़ी जानने की जड़ मार दी। घुटी चाँद, सफ़ाचट डाढ़ी-मूछ, नाम स्वामी धर्मानंद, ख़यालात सातसदी पीछे के, हाथ में मोटा सोटा, बग़ल में झोला, जिसमें चिलम और गाँजा ख़ास तौर से हिफ़ाज़त से रक्खा हुआ—दूसरों को पिलाना, उन्हें बहलाकर मतलब गाँठना; बातचीत पूरे गँजेड़ी की; बैठा गला। धर्मानंदजी ने सोचा—"विजय की तरह विद्या के बल से बैल-विद्यार्थियों को, पूँछ ऐंठ-ऐंठकर, राह पर लाना गधों को घोड़ा बनाना है, लिहाज़ा एक बिलकुल ग़ैर-मुमकिन बात; फिर अक़्लसंद कैसा जो दस क़दम पेश्तर न सोच ले? बात यह कि असर जात का नहीं जाता; किसान ज़माने से गँवार और ज़माने तक ऐसे रहेंगे; विजय को यह एक शौक़ चर्राया है, बल्कि झक या कहें दिमाग़ की कमज़ोरी है; हल जोतने और किताब पढ़ने से बड़ा बट्टा; कहीं के किसान पढ़े-लिखे हैं; इसके मानी ये न हुए कि वे विलियम पिट हो गए;

फिर अगर ऐसा ही ख़याल है कि किसान पूरी ताक़त से हल की मूठ पकड़कर भी पूरी सफ़ाई से क़लम चला लेंगे, तो न्यूटन की राह लोग क्यों नहीं पकड़ते ?—विजय को पहले भेड़ चराना था, न कि पढ़ना।"

दुनिया में सब लोग अपने-अपने फ़ायदे की युक्तियाँ निकाल लेते हैं। धर्मानंदजी दुनिया में विनोद-कौतुक से रहनेवाले जीव हैं। लिखाई-पढ़ाई का काम वह नहीं कर सकते, ऐसी बात नहीं ; उसके क्या गुण और उपयोग हैं, वह जानते हैं ; पर एक ही क़िस्म की निरंतर बकवाद से वह बहुत घबराते हैं; दो रोज़, चार रोज़, दस रोज़ तक ज़्यादा-से-ज़्यादा वह लड़कों को पढ़ा दे सकते हैं। पुलिस पीछा किए थी, घरवाले सर खाए थे, चले आए। 'एक नया अनुभव होगा। फिर विजय की कथा भी कम दिलचस्प नहीं।—एक रोज़ की शोभा इतिहास के कितने रंजक पृष्ठों के पश्चात् छिपी होगी ! पुनः, जीवन के नैश मुहूर्त में एक ही स्नेह की किरण से खिले कैरव और चंद्र के बंधुत्व की तरह विजय और अजित परस्पर हिले-मिले—किसी राहु के छद से वदन जब तक तमोवृत न होगा, अजित विजय को स्निग्ध-हृदय की अमृत-ज्योत्स्ना से तब तक सींचता रहेगा। अपरंच, जिनके यहाँ की भीख पर उसे काल-यापन करना है, उनका ऋण भी वह ब्याज समेत चुका देगा, वह विजय से मैत्री में पीछे क़दम रखनेवाला नहीं।

इस प्रकार कल्पना की उधेड़-बुन में बग़ल में झोला लटकाए

स्वामी धर्मानंदजी विजय की ससुराल से दो कोस फासले पर एक गाँव पहुँचे। बगीचे से लकड़ी तोड़कर धूनी जला दी। आग तैयार होने पर बदन में खूब राख मलकर बैठ गए। जगह सुहावनी पास ही मंदिर और कुआँ, लोगों की आमद-रफ्त की काफ़ी गुंजायश।

धीरे-धीरे बाबाजी के पास भक्त किसान खेतों से आ-आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी ने बिना व्यर्थ वाक्य-व्यय के, पूर्ण धीर-गंभीर मुद्रा से गाँजा मलने को भक्त-वृंद के सामने बढ़ा दिया। यथेष्ट लोभ होने पर भी भक्तगण पहले हिचके। किसी ने कहा—"बाबा, आपका प्रसाद तो है, पर कैसे लिया जाय, शाम को हम लोग ठेके से ले आवें, तब आपका प्रसाद लें।"

बाबा धर्मानंदजी ने आँखें मूँदकर, नाक सीधे आसमान की तरफ़ उठाकर सर हिलाया कि यह कथन शास्त्र-संगत नहीं। भक्तगण सभक्ति चकित हो तपस्वी बाबाजी की विशाल मुद्रा देखते रह गए। धीरे-धीरे सानुनासिक-स्वर बाबाजी ने कहा—"बेटा, यह तो भगवत पर तुम्हारा ही चढ़ाया हुआ प्रसाद है; साधू के पास पैसे कहाँ ?"

भक्तगण बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसे बाबाजी अब तक नहीं मिले थे, जो भक्तों को घर का माल खिला जाते। बड़ी विनय से गाँजे की कली लेकर मलने लगे।

तैयार होने पर बाबाजी को भोग लगाने के लिये दिया। बाबाजी होश में एक दफ़ा खानेवाली तंबाकू जरा-सी खाकर

बेहोश हुए थे, फिर नई रोशनी की बत्ती सिगरेट में भी कभी आग नहीं लगाई। बड़े संकोच में पड़े, पर जिरह में न कटने के जवाब पहले से सोच रक्खे थे। पूर्ववत् नकली स्वर से कहा—"गुरूजी की आज्ञा इस समय कुछ दिनों के लिये दम छोड़ देने की है; बात यह है बेटा कि जो धुआँ मैं मुँह से निकालता हूँ, वह गुरूजी पीते हैं; जो तुम निकालते हो, निकालोगे, वह हम लोग पीते हैं, पिएँगे; आजकल इस चोले को गुरूजी ने अपना अधिकार दे रक्खा है कि अब अपनी गरमी हमें न पिलाओ, दूसरों की गरमी पीना सीखो।"

ऐसे धूम-पान की कोई व्याख्या हो भी सकती है, इसकी जाँच पूरी-पूरी कौन करे? बेचारे किसानों ने चुपचाप विश्वास कर लिया। एक दूसरे को देखते हुए, बाबा धर्मानंदजी की पुनः आज्ञा मिलने पर, सभय पीने लगे। खूब दम कसकर गाँव गए, और सबको एक अजीब बाबाजी के पधारने की खबर सुनाई। तारीफ़ में कहा—"बाबाजी चिलम नहीं पीते, सबकी चिलम का धुआँ पीते हैं।"

दूसरे ने कहा—"तुम घर में बैठे हुए चिलम पियो, बाबाजी अपने आसन से धुआँ पी लेंगे।"

तीसरा बोला—"हाँ भाई, पूरे महात्मा हैं, देखो, दग-दग कर रहा है चेहरा; लेकिन अभी उमर कोई बहुत जियादा नहीं।"

"तू तो बैल है पूरा।" पहला बोला—"अरे, साधू की उमर का कुछ हिसाब रहता है? हम तू हैं कि पच्चीस साल में बाल

पक गए ? महात्मा को ऐसा न कहना चाहिए। अभी कहो हमारे बाबा की बातें कहने लगे।"

"स्वभाव के बादसाह हैं।" दूसरे ने बड़ाई की।

"बादसाह ? बादसाह भी उनके पास आते हैं और झख मारते हैं," आँखें काढ़कर दूसरे को देखता हुआ पहला बोला।

गाँव के छोटे-बड़े साधारण और भलेमानस ऐसे अद्भुत बाबाजी के आने की खबर पा भक्ति-भाव से अपना-अपना कार्य छोड़कर मिलने चले।

देखते-देखते चारो ओर से धूनी घेरकर प्रणाम कर-कर गाँव के सभी वर्णों के लोग नजदीक फ़ासले पर बैठे हुए पूरी भक्ति की नज़र से बाबाजी को देखते रहे। इनमें व्रजकिशोर बाबाजी की तरह नवयुवक है, बाबाजी की उम्र की बराबरी वह नहीं कर सकता। सफ़ाई से रहता है। देखकर बाबाजी भी उसी की ओर मन-ही-मन औरों की तरफ़ से ज़्यादा खिंचे, ऐसी उसकी आजकल की पसंदवाली काट-छाँट। वह दो साल तक कॉलेज की हवा भी खा चुका है। बड़े गौर से अँगरेज़ी समालोचना की निगाह से बाबाजी को देखने लगा। राख के भीतर बाबाजी की चमकीली तेज़ आँखें देख-देखकर व्रजकिशोर मुस्किरा रहा था, सोच रहा था कि यह आदमी दूसरों का निकाला हुआ धुआँ कैसे पी लेता है।

महात्माजी आगंतुक जनों से परिचय कर कुशल पूछने लगे।

प्रश्न—"यहाँ के कौन जमींदार हैं ?"

उत्तर—"तअल्लुक़ेदार मुरलीधर, स्वामीजी !"

प्रश्न—"तुम लोगों के सुख-दुख में शरीक तो होते हैं ?"

लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। फिर स्वामीजी के लिये 'रमता जोगी, बहता पानी' का खयाल कर उन्मन हो गाँव के एक पुराने भलेमानस बोले—"हाँ, स्वामीजी, आजकल जैसे और जगहों के राजे रियाया की खबर करते हैं, वैसे वह भी हैं।"

"नहीं, दिल का भाव ठीक-ठीक साधू से कहा करो, वह तुम्हारी प्रार्थना ईश्वर के पास तक भेजता है और जैसी उसकी मर्जी होती है, तुम्हें बतलाता है। साधू से अपना मतलब छिपाना अपने आपको धोखा देना है। वह जो ईश्वर का सेवक है, उसके जनों की पहले सेवा करता है।" स्वामीजी ने ओजस्वी शब्दों में लोगों के शंका से दबे हृदय को उभाड़ दिया।

गाँव के लोग, जो अभी तक तिलस्म के उस्ताद पर की नज़र से स्वामीजी को देख रहे थे, समझे, उनके सुख-दुख, विशेषकर उनके दुख की जगह स्वामीजी सेवा का मरहम रखना चाहते हैं। व्रजकिशोर एक बदली हुई भावना से देखने लगा। धर्मानंदजी भी साथ-साथ लोगों के मनोभाव पढ़ते जा रहे हैं। अपने-अपने उद्देश की सिद्धि की सबको धुन होती है, सब उसी ग़रज़ से दूसरों के पाबंद होते हैं।

स्वामीजी की इतनी-सी बात से, पार न देखनेवाले, निरुपाय-

पापाचार में पड़े हुए गाँव के लोग साक्षात् ईश्वर के पास प्रार्थना पहुँचानेवाले स्वामीजी को जितने अपनाव से देखने लगे, उसकी वर्णना कोई भी भाषा नहीं कर सकती, साक्षात् सरस्वती वहाँ मौन है। आज तक समर्थ के खिलाफ़ खुलकर एक भी आवाज़ करने की शक्ति उनमें किसी की न थी, वे नव्वाबी युग से अब तक शक्तिमान को साथ देकर अपनी ऐहिक आशा पूरी करते आए थे—उनके खिलाफ़ सर उठाने का स्वभाव मर चुका था; आज उनके ठीक प्राणों में एक सहृदय आवाज़ हुई। गाँव के अच्छे-अच्छे लोग थे—चौंककर एक नया प्रकाश देखा।

"महाराज!" एक बूढ़े, गाँव की सभी जातियों के मान्य भलेमानस ने कहा—"अगर राजा खुद रियाया के माल व इज़्ज़त पर हमला करने लगे, तो फ़रियाद किसके पास करें?"

"इज्ज़त किसे कहते हैं, जब आप लोग समझेंगे, तब दूसरे भी आपकी इज्ज़त लेने की हिम्मत न करेंगे।" स्वामीजी ने कहा—"अभी तो एक दूसरे को बेइज्ज़त करके अपनी इज्ज़त बढ़ानेवाला हज़ार वर्ष से एक-सा चला आता हुआ क़ायदा आप लोग इख़्तियार किए बैठे हैं।"

लोग कुछ समझे नहीं, समझने की उत्सुक आँखों से देखते रहे।

स्वामीजी फिर बोले—"आप लोग एक दिन में न

समझेंगे। क्योंकि ठगने और ठगा जाने की आदत आप लोगों की रग-रग में भर गई है। महाजन, जमींदार, वकील, धर्म, समाज और भाइयों से ठगा जाना आप लोगों का स्वभाव बन गया है। आप लोगों के दिल के आईने में मतलब गाँठने का जो जंग लगा है, वह एक दिन में साफ़ न होगा, और इसलिये अभी माल व इज्जतवाला चेहरा आप लोगों को न दिखेगा। कुछ दिनों बाद कुछ साफ़ होने पर देखिएगा। आप लोग कहें, तो इसके लिये कोशिश की जाय।" लोगों ने समस्वर से सम्मति दी। स्वामीजी ने कुछ समय तक ठहरने का वादा किया। लोगों को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन पुनः इस प्रसंग पर बातचीत करने के लिये गाँव भर की जनता को पिछले पहर एकत्र होने को स्वामीजी ने आमंत्रित किया।

सब लोग स्वामीजीका रुख समझकर चलने लगे। ब्रजकिशोर को अपने ब्रह्मज्ञान का सच्चा अधिकारी समझकर स्वामीजी ने कुछ समय तक रहने के लिये रोका।

उठे हुए लोग कुछ दूर जा आपस में स्वामीजी के अंतर्यामित्व पर आश्चर्य करने लगे कि ब्रजकिशोरवाला हाल स्वामीजी ने जरूर समझ लिया, नहीं तो रोकते क्यों। फिर गाँव के भाग्य की प्रशंसा करने लगे कि ऐसे मौक़े में स्वामीजी का आना ईश्वर की इच्छा का खास मतलब रखता है।

एकांत हो गया। ब्रजकिशोर को देखकर स्वामीजी राख के भीतर मुस्किराए। ब्रजकिशोर इस अद्भुत तरह की बातें करने-

वाले, दूसरों की चिलम का धुआँ पीनेवाले स्वामीजी को शून्य दृष्टि से देखता रहा।

"तुम क्या करते हो?" स्वामीजी ने पूछा।

"अभी-अभी बेकार हो गया हूँ। इससे पहले तअल्लुक़ेदार मुरलीधर के यहाँ कुछ दिनों नौकर हो गया था।"

"फिर?"

"फिर एक दिन कमिश्नर साहब इलाक़े से तीस मील दूर हरखा वन में शिकार खेलने आए। मुझे हुक्म हुआ, उनकी रसद, जिनमें मुर्ग़ियाँ भी थीं, वहाँ लेकर जाऊँ।"

स्वामीजी हँसे। "फिर?"

"मैं हाउस होल्ड इंस्पेक्टर था। मेरे मातहत जितने आदमी थे, सब हिंदू थे। तअल्लुक़ेदार साहब के मकान के अंदर किसी मुसलमान की पैठ नहीं, पर मकान से बाहर, हिंदुओं की आँख बचाकर हिंदू-मुसलमान में वह भेद-भाव नहीं रखते। वक़्त बहुत थोड़ा था। मुर्ग़ियाँ खरीदकर लानेवाला कोई न मिला। हिंदू-नौकरों ने मुर्ग़ी छूने से पहले नौकरी छोड़ना मंज़ूर किया। तीन-चार मुसलमान नौकर थे। पर वे बग़ीचे की कोठी में, ख़ास आदमियों में थे। उन पर सेक्रेटरी साहब का हुक्म था। क़स्बे में एकाएक बेकार मुसलमान न मिला। दस बजे-वाली मोटर भी निकल गई। मैं हैरान हो रहा था कि किसी ने तअल्लुक़ेदार साहब से जड़ दिया कि मैं साहब की मुर्ग़ियाँ लेकर अभी नहीं गया। अब वक़्त पर मुर्ग़ियाँ पहुँच भी नहीं सकती थीं।

तअल्लुकेदार साहब ने मुझे बुलाया और आग हो गए। रह-रहकर होंठ चबाते, मुट्ठियाँ बाँधते और तू-तुकार करते रहे—अबे ब्राह्मण के बच्चे, अगर आदमी नहीं मिले थे, तो तू किस मर्ज की दवा था, तू क्यों नहीं ले गया, यह काम तेरा था या मेरा—अबे, बोल?—मैंने जो तार कर दिया कि आपके वास्ते रसद और मुर्गियाँ जा रही हैं, इसका क्या जवाब दूँ? मैं इसका क्या जवाब देता? फिर हुक्म हुआ, इसके कान पकड़कर निकाल दो।'' ब्रजकिशोर के आँसू आ गए—''फिर इसी तरह निकाल दिया गया। यहाँ मा घर देखती थीं, वहाँ बहन; वह ब्याह के तीसरे महीने विधवा हो गई है, भोजन पका देती थी। निकाला जाने पर डेरे गया, तो बहन ने कहा, तुम नहीं गए, अच्छा हुआ; माधव की अम्मा कहती थीं, आज रात को जमींदार के लोग मुझे पकड़ ले जाते। उनके यहाँ ऐसा करना कुछ बुरा नहीं, कोई बड़ी बात नहीं, रोज का काम है। यह गाँव भी उन्हीं से है, स्वामीजी, सदा शंका लगी रहती है।'' युवक उदास आँखों से स्वामीजी की ओर देखने लगा।

स्वामीजी की पलकों पर दूरतर भविष्य का निकट छाया-पात स्पष्ट था।

दोनो बड़ी देर तक मौन रहे। कितनी करुणा उन पलकों पर थी! ब्रजकिशोर को ऐसी मौन सहानुभूति में प्रकट स्नेह आज तक नहीं प्राप्त हुआ। उसने आश्वस्त होकर कहा—''स्वामीजी, समय बहुत हो चुका, चलकर मेरे यहाँ भोजन करने की कृपा कीजिए।''

स्वामीजी सहमत हो, मंदिर में अपने कपड़े रख कमर में एक दूसरा वस्त्र बाँधकर व्रजकिशोर के साथ चल दिए।

सादर स्वामीजी को बाहर कंबल पर बैठाल भीतर जा थाली लगवाकर बुलाया। हाथ-पैर और मुँह धोकर स्वामीजी भोजन करने बैठे। भ्रम, कभी न करने से याद न रही—स्वामीजी के मुँह की राख मुँह धोने के साथ धुल गई। उस कांतिमान चेहरे को कुछ विस्मय के साथ व्रजकिशोर देखता रहा।

रसोई में उसकी बहन वीणा थी। अनावृत मुख, शुभ्र कुंद-कलिका-सी निष्कलंक, तुषार-हत बाष्प-व्याकुल कमल-नेत्र; किसी चित्रकार ने जैसे करुणा की सोलह साल की तस्वीर खींच दी हो; एक नजर स्वामीजी को देखकर, सभय, प्रार्थना से पूर्व भोजन की पूर्ति के लिये तत्पर।

कितनी करुणा भारत की झोपड़ी-झोपड़ी में है! स्त्री आँख की पुतली-सी नाज़ुक है, हमेशा पलकों के दुहरे पर्दे में बंद रहती है, जब किसी साधारण भी अरिष्ट की संभावना होती है;—मायका और ससुराल; कार्य सबसे सूक्ष्म—केवल दर्शन, पर वह कठोरतम कार्यों का कारण है। संसार की प्रति प्रगति की सुलोचना स्त्री ही नियामिका है—स्वामीजी खाते हुए सोचते रहे—क्या एक बाज़ू कतर देने पर चिड़िया उड़ सकती है? स्त्रियों की दशा क्या ऐसी ही नहीं कर रक्खी यहाँ के कल्मष में डूबे, धर्म को ठेका कर रखनेवाले लोगों ने?

"क्या नाम है इसका ?" स्वामीजी ने पूछा।

"वीणा, स्वामीजी," ब्रजकिशोर ने उत्तर दिया।

वीणा सजीव-चंचल हो गई। स्वामीजी चुपचाप भोजन कर, हाथ-मुँह धो, बाहर गए।

---

विजय के प्रयत्न से साधारण जनों की सहानुभूति बादलों के छिन्न, कटे टुकड़ों की तरह ग्राम्य आकाश घेरकर एकत्र होने लगी। शीतल, सत्-समीर के मंद-मंद झोंके हृदय का पहला ताप हरने लगे। ऋतु बदल गई। शिक्षा के जल से ऊसर भूमि भीग गई। श्यामल सजल मसृण तृण-बाल एक साथ सर उठाकर पूर्ण प्रीति से लहराने लगे। हवा के साथ बँधकर एक तरफ़ झुकना पहलेपहल सीखा। ज्यों-ज्यों तृण-संकुलता बढ़ने लगी, स्थानीय पशु-वृत्ति उसे चलकर जीवन की पुष्टि के लिये त्यों-त्यों प्रबलतर, उच्छृंखल हो चली।

देहात के ज़मींदार लोग किसानों का यह संगठित शिक्षा-क्रम देखकर घबराए। प्रकाश मिलने पर स्वभावतः लोगों को अँधेरे की स्थिति, दुःख आदि मालूम हो जाते हैं, और उनका पहला वह भय दूर हो जाता है। विजय के ओजस्वी रूप के भीतर जो शिखा साधारण जनों को दिखी, वह इतनी उज्ज्वल पहले किसी के भीतर न दिखी थी, इसलिये देहात के लोग आज तक आत्म-परिचय-वंचित रह गए थे; और, ज्यों-ज्यों उन्हें अपने हृदय की ज्योतिर्मयी महिमा-मूर्ति से परिचय मिलने लगा, और सबको एक ही जग-विटप के मनुष्य-

सुमन होने का ज्ञान-सूत्र प्राप्त हुआ, उनका पूर्वरूप, जिसमें वह जमींदार के क्रीतदास, ब्राह्मणों के चिर-सेवक और अपने एक दूसरे भाई पर प्रहार करने को इच्छुक पुलिस के हाथ के हथियार थे, बदलने लगा; जमींदारों, ब्राह्मणों और पुलिस के कांस्टेबिलों-चौकीदारों की त्यों-त्यों त्योरियाँ चढ़ने लगीं।

यदि ताल की मछलियाँ जाल से निकल जाने की कोशिश करें, तो धीवर लोग सारा जल सींचकर उन्हें पकड़ेंगे, यह प्राकृतिक नियम है। विजय के कृत्यों से विजित जमींदार और कुछ और-और लोग इसी प्रकार पहले जाल डालकर फिर जल सींचने का उद्योग करने लगे। पहले, जब जबानी डाँट-फटकार बेकार हुई, तो बड़े साहब के यहाँ विजय के नाम किसानों को बरगलाने की अर्जियाँ देने लगे; कुछ समय तक इसका कुछ असर न होता हुआ देखकर कानूनी चालों से किसानों की किश्ती मात करने पर तुले। पीछे पुलिस और स्थानीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थों का बल था, जो गोल पेंदेवाले लोटे की तरह सब तरफ लुढ़कते हैं; ज़रा इशारा चाहिए; उनका भरा जल ढल जाता है, इसकी उन्हें परवा नहीं; वे खाली रहकर ज्यादा ठनकना चाहते हैं—आवाज-आवाज पर बोलना।

विजय का दीन-दुखियों में बल था, यद्यपि दिल से उसे सभी मानते थे। दीन जनों में सामाजिक और व्यावहारिक कम-ज़ोरियाँ-ही-कमज़ोरियाँ रहती हैं। पड़ोस के जमींदारों ने यहीं

से अपनी कामयाबी की नींव डालना शुरू किया। ग़रीब होने के कारण अधिकांश किसान गाँव और पड़ोस के महाजनों के क़र्ज़दार थे। किसी-किसी का लगान भी बाक़ी था। ज़मींदार लोग किसानों की अवस्था जानते थे कि ग़रीब हैं, कुछ दे नहीं सकते, अगर दावा कर देंगे, तो रुपए कुछ और अदालत में व्यर्थ ख़र्च होंगे, और वसूल कुछ न होगा। इसलिये अगली फ़सल तक धैर्य रखते थे, और फ़सल होने पर कुल बक़ाया और हाल का जो कुछ होता था, वसूल कर लेते थे। अगर किसान किसी महाजन का भी क़र्ज़दार हुआ, तो उसकी रास की लाश पर श्वान और गीध की, अपनी-अपनी सुविधानुसार, झपट होती थी, एक दूसरे की आँख बचाकर नोच लेते थे। पर अब के मिलकर देहात की सामाजिक और ज़मींदारी प्रतिष्ठा क़ायम करने के स्वार्थ की गंध से रोचक निश्चल उद्देश से ज़मींदार और महाजनों ने किसानों को तंग करने की सोची। किसानों का सबसे बड़ा क़सूर यह कि वे पहले की तरह नहीं डरते; लगान के अलावा वाजिब-उल्-अर्ज़ से अधिक जो रक़म और परिश्रम किसानों से लिया जाता था—हली, भूसा, रस, पुआल, सिंचाई का काम आदि, अब नहीं देते; और ऐसा देखते हैं, जैसे परम मित्र हों।

दबे हुए जो होते हैं, दबाना उनका स्वभाव बन जाता है। और जब न दबनेवाली वृत्ति बढ़ती है, तब दबानेवाली वृत्ति भी अपनी उसी शक्ति से बढ़ती रहती है। फिर जिसमें शक्ति

अधिक हुई, उसकी विजय हुई। जमींदारों ने अपने एक बड़े स्वार्थ की रक्षा के लिये 'अर्ध तजहिं बुध सर्बस जाता'-वाली नीति पकड़ी। वसूल करने के अभिप्राय से नहीं, तंग करने के विचार से बाक़ी लगान का दावा दायर कर दिया। आस-पास के चुन-चुनकर ग़रीब किसान लिए गए। सम्मन जारी हुए। पर जिन-जिनके नाम आए, उन्हें पता भी न चला, और सम्मन तामील हो गए। किसी में लिखा गया, सम्मन नहीं लेता, भग गया। साथ दो गवाह भी हो गए। किसी में लिखा गया, घर से बाहर नहीं निकलता, घर में है, इसलिये दरवाज़े पर सम्मन चस्पाँ कर दिया गया। दो गवाहों के दस्तख़त। इसके बाद, एकाएक पास-पड़ोस के उन गाँवों में, उन्हीं-उन्हीं किसानों के नाम वारंट। सब पकड़कर बैठाए गए। गाँवों में खलबली मच गई। स्त्रियाँ ऊँचे, करुण स्वर से स्वामीजी के नाश के लिये हाथ उठाकर ईश्वर से प्रार्थना करती हुई रोने लगीं। कोई विलाप करती हुई अपने महाजन के पास दौड़ी, कोई गाँव के प्रतिष्ठित धनी सज्जन ब्राह्मण-कायस्थ के मकान की तरफ़ चली। कोई जमींदार के पैरों पड़ने लगी। कोई ज़मानत के लिये चाहिए। नहीं तो सीधे हवालात बंद किए जायँगे। किसानों में किसी की हैसियत ऐसी नहीं, जिसकी ज़मानत मंज़ूर हो। चारो तरफ़ से सधा काम, सरकार के लोग, जमींदार, महाजन, सब सधे। बेचारे खेत जोतनेवाले सीधे किसान, अदालत और पुलिस के नाम डरनेवाले, हवालात के ताप से सूख गए। लगान

बाक़ी था ही, अदालत में झूठ कैसे कहेंगे ; जमींदार के काग़ज़ात झूठ नहीं हो सकते। सरकार का लगान बाक़ी है, इसलिये सजा जरूर होगी। ईश्वर पर विश्वास रखकर, विश्वास के बल पर अनहोनी को सब प्रकार सिद्ध करने की जिनकी आदत है, उनके लिये हवालात के बाद सजा तक की कल्पना कर लेना कोई बड़ी बात नहीं। सब लोगों ने सोचा कि पता नहीं, कितने दिनों तक हवालात में बंद रहना पड़ेगा, और वहाँ भंगी का बनाया भोजन भी करना पड़ता है, नहीं तो कोड़े पड़ते हैं, अगर सजा हो गई, तो लड़के-बच्चे मर जायँगे, दीन-दुनिया दोनो तरफ़ से गए, लौटकर रोटी देनी पड़ेगी ; तब, चिरकाल की संचित अपनी प्यारी कायरता के सुख की याद कर-कर, जमींदार से जुदा होने का अपराध पूरे मन से स्वीकार कर, बालकों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। गाँव के महाजनों ने जमानत देने से इनकार कर दिया। हर गाँव से एक-एक, दो-दो आदमी स्वामीजी के पास मदद के लिये आए, और अपने दुख का बयान कर रोने लगे। विजय ने सबको समझाकर कहा कि हवालात सबको चले जाने के लिये कहो, पेशी के दिन और-और लोगों को लेकर हम आते हैं, हवालात में फाँसी नहीं हो रही, और अपने हक़ के लिये और सत्य के लिये लड़ रहे हो, डरो मत। पर इसका लोगों पर कुछ प्रभाव न पड़ा। क्योंकि इसी न देने में अपना फ़ायदा किसानों को देख पड़ा था, अब नुक़सान सामने है।

स्त्रियाँ तथा और-और किसानों के भाई-बंद समस्वर से कहने लगे, हमें इसी स्वामी ने चौपट कर दिया, हमें तो अपने जमींदार के राज में सुख है। हाथ जोड़कर सब प्रार्थना करने लगे, अब के क़सूर माफ़ कर दिया जाय, मालिक, अब कान पकड़ते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे—तुम जो राह निकालोगे, उसी से चलेंगे। पर किसी की न सुनी गई। चपरासी, कांस्टेबिल, जमींदार और कुछ हर गाँव के प्रतिष्ठित लोग गिरफ्तार किसानों को लेकर थाने की तरफ़ चले। कुहराम मच गया। रोती-बिलखती, अपने जमींदार के पैरों पड़ती हुई, धूलि-धूसर किसानों की स्त्रियाँ भी गाँव की हद तक आईं, और एक जगह पछाड़ खाकर ऊँचे स्वर से बार-बार करुणामिश्र प्रार्थना करने लगीं।

किसी की एक न सुनी गई। सब थाने हाज़िर किए गए। हवालात की तरफ़ देखकर बड़े दुख से उमड़-उमड़कर सब रोने लगे। हाथ जोड़कर बार-बार अपने-अपने जमींदार से कृपा की भीख चाहने लगे। उन्हें हर तरह हारे हुए देखकर, उनसे यह मंज़ूर करा कि कभी अब स्वामीजी को कोई एक मुट्ठी भीख न देगा, जो पास बैठेगा, उसे जुर्माना पाँच रुपया देना होगा, मुक़द्दमा दायर करने में जो कुछ ख़र्च हुआ, उसका दूना लिखकर, उस पर अँगूठा-निशान और साथवाले पड़ोस तथा गाँव के महाजनों की गवाही करा जमींदारों ने उन्हीं से किसानों की जमानत भी लिखा दी। सब लोग जैसे यम के फंदे से छूटे।

दूसरे ही दिन थानेदार साहब सदल-बल आ धमके, और स्वामीजी को गिरफ़्तार कर लिया। ज़मींदारों ने ऐसा ही माया-जाल रचा था। स्वामीजी का चालान हो गया, सुनकर रहे-सहे लोगों की हिम्मत भी पस्त हो गई। गाँव-गाँव यह आतंक फैल गया। गाँवों में जो साधारण-से पढ़े-लिखे लोग किसान-बालकों को पढ़ानेवाले मास्टर थे, गाँव छोड़कर शहर भग गए। बालकों ने भी पाठशाला जाना बंद कर दिया। ज़मींदार और महाजन लोग रास्ते में मिलने पर आँख दबाकर हँसने लगे।

स्वामीजी का ज़िला-जेल चालान कर दिया गया। अदालत में थानेदार को शहादत पेश करने की तारीख़ मिली। मुक़द्दमा राजद्रोह पर था। थानेदार कृपानाथ के गाँव मदद के लिये आए। जितने किसान स्वामीजी के भक्त थे, सबको कृपानाथ ने बुलवाया, और थानेदार की तरफ़ से साक्ष्य के लिये जाने को कहा। दूसरे गाँवों के भी किसान लिए गए। किसी में यह हिम्मत न थी, जो गवाही देने से इनकार कर देता, फिर थानेदार साहब ने अपनी इच्छा के अनुसार सबको सिखला दिया कि यह-यह कहना।

पेशी के दिन विजय ने देखा, बुधुआ पहला गवाह है। तरह-तरह की बातों से 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति' यह उक्ति राज-द्रोह के संबंध में सबने साबित की। विजय की आँखों से आँसू बह चले, किसानों की दशा के विचार से।

विचारक को मालूम हुआ, स्वामीजी को कुछ नहीं कहना ; तब एक साल की सज़ा कर दी। किसान अपनी पूर्वस्थिति में दाखिल हो गए।

---

## ( १५ )

कुछ दिनों बाद, हृदय का उत्सुक उत्स विजय के सुख-पुर की ओर शोभा के रहस्य-समुद्र से मिलने के लिये अजित को भीतर से धकेलने लगा। अजित का जैसा कौतुक-प्रिय पहले से स्वभाव था, वह कल्पना-लोक में लीन, मित्र की शून्य हृदय की शोभा को, किसी एक चिह्न के सहारे प्रयत्नपर युगों की लुप्त श्री के अन्वेषक की तरह, पत्र-मात्र के आशय से खोजने के लिये चला। अज्ञान, भ्रम, कल्पना, उपकथन तथा घटनाओं की कितनी मिट्टी के नीचे ऐसे पत्र की सुहृत् लेखिका अपनी चिरनिर्मल धवल शान्त शोभा लिए रत्न-प्रभा की तरह, अथाह जल-तल में शुक्ति की तरुण मुक्ता-सी, अपने जीवनोद्देश पर यह शेष-पत्र-पुष्पार्पण कर पतझड़ के समय दारु-देह की अदृश्य सुमनावलि की तरह रूप-भार-सुरभिवाली वह निरुपमा कहाँ छिपी होगी? यदि ताप से दह-दहकर क्षीण-से-क्षीणतर होती हुई अपने ही प्रिय-पद-चिह्न में लीन हो गई हो, तो? उसे मैं कहाँ खोजूँगा? इस प्रकार अनेकानेक काल्पनिक रूप गढ़ता-बिगाड़ता हुआ, प्रगतिशील जीवन-यान के मानसिक उधेड़-बुन में पड़े हुए पथिक की तरह पथ पार करता हुआ, अपने उसी वेश में वह विजय की ससुराल के

प्रांत-भाग के एक प्रांतर में पहुँचा, और एक पेड़ के नीचे, रास्ते के किनारे, कुछ लकड़ी एकत्र कर, धुनी रमाकर ध्यान में बैठ गया।

एक स्त्री सर पर एक भार रक्खे आती हुई देख पड़ी। सजग हो आसन मारकर साधु ने पलकें मूँद लीं। खुली, उसरीली उस काफ़ी लंबी-चौड़ी भूमि के बाद विश्राम करने की यही एक सुखद छाँह थी। तब तक काफ़ी जाड़ा नहीं पड़ रहा था। साधु को देखकर मनहारिन की आँखों का कौतुक बदल गया। थक भी चुकी थी। अपना हल्का भार उतारकर, तृप्ति की लंबी साँस छोड़कर बैठ गई। बाबाजी से अपने फ़ायदेवाली बातें सोचने लगी। बाज़ार के लोग, चाहे शहर के हों या देहात के, स्वभावतः खबरें प्राप्त करने के इच्छुक, कौतूहली होते हैं। कोई नई खबर बाबाजी से मिल जाय, जैसी अक्सर साधुओं से अब तक उसे मिलती रही हैं, तो घर-घर सुनाती हुई, स्त्रियों को उभाड़कर, आशा में बाँधकर, अपना माल ज्यादा बेच सकेगी; मुमकिन्, कोई पुरस्कारवाली बात बाबाजी से मिल जाय; इस गरज से, कुछ विश्राम कर, उठकर बाबाजी के पास जा, हाथ जोड़कर दंडवत् की। आँखों में हँसती रही। वह बहुत बार बाबाजियों से मिल चुकी है। वे भिन्न-भिन्न अनेक रूपों से उसके सामने आ चुके हैं। उनमें इंद्रजाल का भंडार, ऐशायी के गुप्त रहस्य, लड़के होने के उपाय, चोर-डाकुओं के पते, वशीकरण-मंत्र और विधाता से

न हो सकनेवाली कितनी ही घटनाओं का संघटन प्रयत्न कर चुकी है—जैसे किसी स्त्री के प्रेमी को, जो हज़ार मील दूर परदेश में कार्य-वश रहता है, रात ही-भर में प्रेमिका की ख़बर दे आना, जो अपढ़ है, और सुयोग न मिलने के कारण पत्र लिखवाने से लाचार ; ऐसा ही किसी पुरुष की ओर से पर्दे के सात पर्तों के भीतर रहनेवाली स्त्री के लिये करना; मंत्र-शक्ति से भरी हुई राख हाथ में लेकर नाम के साथ फूँक देने पर लाख योजन दूर बैठे हुए दुश्मन का उसी वक़्त ख़ात्मा हो जाना ; दी हुई रोली का तिलक लगाकर चलने से दूसरों का तिलकवाले को न देख पाना ; बाबाजी का दिया हुआ कंकड़ सर पर रख, साफ़ा बाँधकर जाने से मुक़द्दमा जीत जाना आदि-आदि। जहाँ मुश्किल मुक़ाम देखते थे, वहाँ बाबाजी लोग अनुपान ऐसे बतला देते थे, जो उनके सीधे उपाय के ही अनुसार टेढ़े होते थे। अतः फल न होने पर अविश्वास करने का कारण न रह जाता था। वशीकरण आदि पर तो मनहारिन को स्वयं विश्वास है। क्योंकि शोभा पर उसने इसका प्रयोग एक बाबाजी से कराया था, और उसके मा-बाप इसी के बाद मरे थे, और वह हाथ भी आ गई थी। पर चूँकि, बाबाजी के कहने के अनुसार, हाथ आने के दूसरे दिन गाँव से न हटाई गई, इसलिये दूसरे के साथ चली गई, मंत्र की शक्ति उसे दूसरी राह से निकाल ले गई ; क्योंकि उसे निकल जाना ही था !

कौतुक से मिली भक्ति से ज्यों ही उस स्वार्थ की पुतली को सामने झुकते हुए अजित ने देखा, त्यों ही आँखें मूँदकर, अपना प्रभाव डालने के उद्देश से जोर से बोल उठा—"दूर हो, दूर हो, मैं नहीं बचा सकता तुझे !"

मनहारिन के होश उड़ गए। जितने पाप उसने किए थे, छाया-चित्रों की तरह उनकी तस्वीरें आँख के सामने सजीव होकर तरह-तरह की विकृत आकृतियों से उसे डराने लगीं, और उसने सोचा कि मेरे पापों का हाल बाबाजी को मालूम हो गया। उसका तमाम जीवन पाप करते-करते बीता है। अजित भी उसकी मुरझाई श्री एक बार देखकर, पलकें बंद किए, अपनी ताक में, चुपचाप बैठा रहा।

"क्यों बाबाजी, क्या देख रहे हैं आप ?"

"तू क्या नहीं जानती कि क्या देख रहे हैं ? फल देख रहे हैं, जो अब तू भुगतेगी।"

अजित को फल-फूल का कुछ भी हाल मालूम न था। पर आदमी के पुतले में वासना के फूलों से भोग के कड़ुवे फल लगते हैं, इसका अनुमोदन किताबों में उसे मिल चुका था, और उदाहरण भी अपनी ही आँखों कई प्रत्यक्ष कर चुका था। कानपुर के सरसैया-घाटवाले रास्ते के दोनों ओर जो साधु बैठे रहते हैं, उनमें एक के पास उसका एक मित्र गया था। साधु के पास प्रणाम करने के लिये जो जायगा, वह ज़रूर पापी होगा ; अपने एक या अनेक कृत-पापों के

स्मरण से जब उसे चैन नहीं पड़ता, तब वह साधु की तरफ़ दौड़ता है कि प्रणाम करके अपने पाप का बोझ दूसरे पर लाद दे। साधु इस तत्त्व को खूब समझते हैं। उस मित्र को उस साधु ने फटकारा, तो उसने सारा क़िस्सा बयान कर दिया, और ऊपर से पूजा भी चढ़ाई। अजित को एक हाल और मालूम था। एक डॉक्टर थे। वह आध्यात्मिक चिकित्सा करते थे। लखनऊ में रहते थे। आध्यात्मिक चिकित्सा का नाम सुनकर अधिक-से-अधिक लोग उनके बँगले पर आने लगे। डॉक्टर को रोग बतलाना धर्म है। और, पीड़ा के प्रशमन के लिये स्वभावतः रोगी उस समय सारल्य की मूर्ति बन जाता है। इस तरह, कुछ दिन आध्यात्मिक चिकित्सा करने के बाद, डॉक्टर साहब ने संसार के रोगियों की संख्या में मालूम कर लिया कि एक विशेष रोगवाले प्रतिशत सत्तर से अधिक हैं। फिर तो डॉक्टर साहब सिर्फ़ चेहरा देखकर ही रोग के लक्षण बतलाने लगे। उनके उसी खास रोग के कोठे में जब सैकड़ा सत्तर आदमी पड़ते हैं, तब केवल चेहरे से रोग की पहचान कर रोग के साथ लोगों के चरित्र की कथा कहने लगे, और डॉक्टर साहब को आसानी से सैकड़ा सत्तर नंबर मिलने लगे। बड़ा नाम हुआ। पर डॉक्टर साहब को यह खयाल न रहा कि उनकी यह चारित्रिक पहचान केवल लखनऊवालों पर ज्यादातर पूरी उतरती है, अब नाम फैल गया है, और बाहर से भी लोग आने लगे हैं, जो ऐसे मर्ज़ में

मुब्तिला अक्सर नहीं होते। लिहाज़ा इन्होंने बड़ी भारी ग़लती की। देहात से एक सूबेदार साहब आए। उम्र चालीस साल, खासे तगड़े-पट्ठे। पर बदन में एकाएक पारा फूट आया था, जिसके दाग़ चेहरे पर भी ज़ाहिर थे। डॉक्टर साहब धाक जमाने के इरादे से चेहरा देखते ही गालियाँ देने लगे। सूबेदार साहब ने सोचा, यह शायद आध्यात्मिक चिकित्सा-प्रणाली के अनुसार डॉक्टर साहब मेरे रोग को गालियाँ दे रहे हैं, जैसे किसी के सिर ब्रह्मराक्षस आने पर लोग उस आदमी से नहीं, ब्रह्मराक्षस से बातें करते हैं। पर जब सूबेदार साहब को ही वह कहने लगे—"तूने ऐसा ( संबंध-विशेष का उल्लेख कर ) किया है, बड़ा नीच है, आदि-आदि", तब सूबेदार साहब की समझ में बात आई कि यह रोग पर नहीं, मेरे ही झूठ इतिहास पर व्याख्यान हो रहा है। बस, डॉक्टर साहब को देहाती सूबेदार साहब ने उलटा सर के बल खड़ा कर दिया, और अपने चार सेरवाले चमरौधे उपानहों से चाँद गंजी कर दी; फिर मेडिकल कॉलेज रोग की परीक्षा करवाने चल दिए। वहाँ, डॉक्टर की पूछ-ताछ से, मालूम हुआ, सूबेदार साहब के पिता को यह रोग था, और सूबेदार साहब के पैदा होने से पहले इसके बीज उनमें आ चुके थे।

अजित इसीलिये चारों ओर से चौकस है। किसी प्रकार भी मनहारिन के मन में कुछ झूठ की शंका हुई कि यहाँ उसके चारों ओर अथाह गहराई हो जायगी, फिर बुद्धि की बल्ली नहीं

लग सकती, कुहरे में प्रकाश की तरह सत्य रहस्य उसकी अपनी पृथ्वी से दूर ही रहेगा।

बाबाजी को एक समझ लेनेवाली आवाज़ कर चुपचाप बैठा हुआ देख मनहारिन ने समझा, बाबाजी ज़रूर सब कुछ समझ गए, यह दूसरों से कह देंगे, तो लोग मुझे जीती गाड़ देंगे, और अगर मेरे ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई होती होगी या कोई ख़ुदाई मार पड़नेवाली है, तो उसे भी यह देख चुके होंगे, नहीं तो ऐसा क्यों कहते ? यह ज़रूर कोई सच्चे साधु हैं ; कैसा चेहरा जगमगा रहा है ! जो होना है, उसके बचाव के लिये इन्हीं की शरण क्यों न लूँ ?"

ऐसा निश्चय कर बड़ी भक्ति से उसने प्रणाम किया, और हाथ जोड़े हुए खड़ी रही।

अजित समझ गया कि यहाँ दाल में काला अवश्य है, और पेंचदार शब्दों में फिर कहा—"अगर साधुओं से भी छिपाना है, तो हाथ जोड़कर खड़ी क्यों हो ? जाओ। जब तक आ नहीं पड़ती, तब तक आदमी की पुतली नहीं समझना चाहती।"

मनहारिन को ऐसा जान पड़ा कि अब कुछ हुआ ही चाहता है। घबराकर बोली—"महाराज, पेट पापी चाहे जो करा ले, थोड़ा है। अब तो आप ही मुझे बचानेवाले हैं।"

पूरा विश्वास हो जाने पर कि यह कुछ या बहुत हद तक बदमाश ज़रूर है, उस पर अपनी दूसरी दूरदर्शिता का प्रभाव

डालने के उद्देश से गंभीर हो अजित ने दूसरी भविष्यवाणी की, जिस तरह की विजय से सुनकर वहाँ के ज़िलेदार पर उसकी धारणा बँध गई थी—"इस गाँव का ज़िलेदार, उफ् ! कितना टेढ़ा आदमी है ! समझता है, उसका मतलब कोई नहीं जानता। अरे बच्चे, तू ईश्वर की आँखों में धूल झोंकेगा ? उसके बंदे सब कुछ जानते हैं। एक पहर से लगातार उसके भूतों से लड़ रहा हूँ, बिना भूतों को उतार दिए साधु गाँव में भिक्षा लेने कैसे जाय ? पर भूत नहीं उतर रहे। उसके दिल में तो कहीं रत्ती-भर भलाई का ठौर ही नहीं, इसीलिये भूत छोड़ भी नहीं रहे !"

अजित आप-ही-आप ज़ोर से खिलखिलाकर हँसा—"तुम्हारे भूत सब बयान कर रहे हैं। अच्छा, ऐसा भी किया ! अच्छा, यह भी हुआ !"

यह कहकर मुस्किराती आँखों से मनहारिन की तरफ़ देखा। उसको ज़िलेदार पर होनेवाली बातें सुनकर काठ मार गया था। उसके अपने भी पाप ज़िलेदार के साथ किए हुए याद आ रहे थे। स्वामीजी जान गए समझकर उनके देखने के साथ बोली—"इसी ने मुझसे कहा था महाराज, और रुपए का लालच दिया था कि पचीस रुपए दूँगा, अगर शोभा को ला दे। बड़ा बदमाश है। उसके बाप की चार-पाँच हज़ार की रक़म घर में डाल ली। उसे भी बिगाड़ देता, पर वह ख़ुद कहीं चली गई। बड़ी नेक, बड़ी भोली लड़की थी महाराज !

और पता नहीं, कहीं इसी ने मारकर डाल दिया हो, पर लोग कहते हैं, किसी के साथ भग गई।"

सर हिलाकर स्वामीजी ने कहा—"बात तू ठीक कहती है।"

महाराज का मन पा, उनकी कृपा से अपने बचाव की पूरी आशा कर, आप-ही-आप उच्छ्वसित हो मनहारिन कहने लगी—"महाराज, इस गाँव का तालुकदार, कौन नाम ले मुए का—चार रोज़ खाना न मिले, पक्का बदमाश है, वही यह सब कराता है, उसी के लिये बेचारी को घर छोड़कर भागना पड़ा।" कहकर, एकाएक करुण स्वर से रोने लगी, फिर आप ही आँसू पोछकर कहा—"और रामलोचन की बेटी तो या अल्लाह! ऐसी गई, जैसे किसी को पता भी न हो।"

"अच्छा, अब तू जा, कल मिलना, मैं शाम तक उसके भूतों को दो रोज़ के लिये मना लूँगा।" कहकर स्वामीजी ने पलकें मूँद लीं। मनहारिन उनकी प्रसन्नता से ख़ुश हो, अपनी टोकरी सर पर रख, गाँव की ओर चली।

मनहारिन के पैर तेज़ उठने लगे। सोचने लगी—कब गाँव पहुँचूँ, कब महादेव मिले। अपनी ओर से निश्चिंत हो गई थी कि खुदाई मार बाबाजी टाल ही देंगे, दूसरों के लिये कौतुक बढ़ा। महादेव से वह नाराज़ थी। महादेव उससे काम भी निकालता था, और शेखी भी बघारता था, जैसे उसका मालिक हो। शोभा के मामले में पच्चीस रुपए देने को कहा था, सिर्फ़ दो दिए थे, और एहसान भी नहीं माना, कहा कि यह सब तो मैंने खुद किया है, तुझे इसलिये दो रुपए देता हूँ कि तू बुरा न माने। अब वही महादेव अपने पाप के फंदे में फँसा है। देखूँ ज़रा, क्या कर रहा है। अल्लाह की क़सम, कभी जो बाबाजी का नाम बताऊँ। ले अब मज़ा, और देखती हूँ, कौन तुझे अच्छा किए देता है।

सोचती हुई मनहारिन गाँव के भीतर आई। निकास पर ही जिलेदार महादेवप्रसाद का मुक़ाम, जमींदार का डेरा मिला। चौपाल में चारपाई पर पड़े महादेवप्रसाद कराह रहे हैं। तीन-चार रोज़ से कमर में सख्त दर्द है। कुछ बुखार भी है। चारपाई के एक बग़ल कच्ची मिट्टी के गमले में कंडे की आग सुलग रही है, थूहड़ और मदार के कुछ पत्ते इधर-उधर

पड़े हैं, जैसे सेंक हो रही थी, और ये पत्ते बाँधने के काम से लाए गए थे। तीन-चार साल पहले एक बेवा की अटारी से रात को कूदने से कमर में इन्हें चोट आ गई थी, अब एकाएक उभर आई है।

महादेव का कराहना सुनकर मनहारिन बड़ी ख़ुश हुई, और बाबाजी पर उसे पूरा विश्वास और अचल भक्ति हो गई। "अरे जिलेदार साहब," चारपाई के नज़दीक जा आवाज़ दी, "क्या हो गया है आपको? आज पाँचवें दिन मुझे इस गाँव फेरी डालने का मौक़ा मिला है, उस रोज़ तो आप अच्छे थे।"

"अरे भाई, मर रहा हूँ, और क्या कहूँ।" काँखते हुए महादेवप्रसाद ने कहा।

मनहारिन ने टोकरी वहीं उतारकर रख दी। इधर-उधर देखा, कोई न देख पड़ा। पास जाकर धीमे स्वर से कहा— "यह और कुछ नहीं, तुम्हारे ऊपर भूत सवार हैं। गाँव के किनारे एक बाबाजी बैठे उन भूतों से लड़ रहे हैं। कहते हैं—'ये सब पापवाले भूत हैं।' महादेवपरशाद के भूत सब हाल बयान कर रहे हैं, और वह जो कुछ कहते हैं, हर्फ़-हर्फ़ सच्चा है। अभी तुम्हें देखा नहीं। पर सारा हाल बयान कर रहे हैं। और, एक ही का हाल नहीं, सबका, चाहे जो जाय। मुझसे कहने लगे, मनहारिन, तू दिल से बड़ी भली है, तेरे पेट में छल नहीं रहता, महादेव जिलेदार ने तेरे रुपए नहीं दिए, इसका उसे बड़ा बुरा फल मिलेगा।"

पिछले वाक्य से महादेवप्रसाद को आग लग गई। पहले जैसा विश्वास हुआ था, वैसा ही अविश्वास भी हुआ कि बिलकुल झूठ कह रही है। लछमन तरकारी लेकर मकान के भीतर गया था, उसे आवाज़ दी। रुख बदला हुआ देखकर मनहारिन ने अपनी टोकरी उठाई, और यह कहकर कि आप समझोगे, मैं सच कहती हूँ या झूठ, वहाँ से चल दी।

फिर घर-घर बाबाजी के शाम को आने की बात, महादेव के भूतों से लड़ना, मन की बात जान लेना, बहुत पहुँचे हुए फ़क़ीर होना, शोभा का रत्ती-रत्ती पता रखना, और सब प्रकार के असंभवों को क्षण-मात्र में संभव कर देना आदि-आदि ख़ूब रँगकर स्त्रियों को सुनाने लगी। बाबाजी के दर्शन के लिये तरह-तरह की कामना रखनेवाली स्त्रियों को उद्ग्रीव कर, पूरा विश्वास भरकर शाम से पहले अपने घर चली गई। बाबाजी ने दूसरे दिन मिलने के लिये कहा है, इस न नाँघनेवाले उपदेश पर पूरी भक्ति रखने के कारण दूसरी राह से घर गई। बाबाजी से उस रोज़ फिर नहीं मिली।

चार बजे के क़रीब, पिछले पहर, अजित गाँव के भीतर गया। उसे गाँव के कई और लोगों ने आसन मारकर धूनी के किनारे ध्यान करते हुए देखा था। गाँव में जाकर उन लोगों ने भी महात्माजी के आगमन की चर्चा की। मनहारिन पूरे उद्योग से प्रचार कर ही रही थी। महात्माजी गाँव के किनारे बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं, दुपहर बीत गई है, उन्हें

कुछ भोजन न पहुँचाया जायगा, तो गाँव के लिये हानिकर है, इस विचार के, धर्म को प्राणों से प्रिय समझनेवाले कुछ लोग दूध, मिठाई और भोजन आदि थालों में सजाकर ले गए; पर स्वामीजी ने गंभीर होकर कहा—"तुम लोगों की सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं दिन को भोजन नहीं करता, शाम को तुम्हारे गाँव जाने पर करूँगा, अभी मैं एक विशेष कार्य में दत्तचित्त हूँ, तुम लोग लौट जाओ।"

लोग प्रणाम कर, स्वामीजी की प्रोज्ज्वल यौवन की शिखा को राख में ढकी हुई कुहरे के भीतर से सूर्य की सुंदरता देखकर मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए चले गए। स्वामीजी के गाँव जाने पर लोग उनके दर्शन के लिये एकत्र होने लगे। संध्या के बाद अधूरी आकांक्षावाली स्त्रियों ने मौक़ा मिलने पर दर्शन करेंगी, सोच रक्खा था। मनहारिन के मुँह से जैसी तारीफ़ वे स्वामीजी की सुन चुकी थीं, उन्हें विश्वास हो गया था कि उनकी ज़रा-सी प्रार्थना कभी भी स्वामीजी की कृपा होने पर अधूरी न रह जायगी। जिसके पति को ख़बर न थी, और जो स्वामीजी से कोई कामना पूरी कर लेना चाहती थीं, पति के आते ही स्वामीजी की अनर्गल तारीफ़ कर दर्शन के लिये भेज दिया, और लोगों के आने पर ख़ुद भी जायगी, यह आज्ञा ले ली।

एक तरफ़ गाँव के एक बड़े शिवालय में स्वामीजी ठहरे हुए हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ। अस्ताचल चलनेवाले सूर्य की

किरणों से शिशिर के शीश पर सुनहला ताज रक्खा हुआ है। खगकुल अपने आवास की डाल पर स्नेह-कलरव द्वारा मातृ-स्वरूपा प्रकृति की रानी की सांध्य वंदना कर रहे हैं। नवीन शस्य और सजल शोभा दिगंत तक फैली हुई मनुष्यों के जीवन की छोटी-बड़ी कल्पनाओं की तरह पृथ्वी की गोद पर लहरा रही है। मधुर मोहक स्वप्न की तरह, मनुष्य के मन को अपनी स्थितिवाली संकीर्णता से भुला, माया-मरीचिका में दूर-दूरतर ले जाकर सुख और ऐश्वर्य का पूर्ण अधिकारी बना रही है। प्रकृति की इसी प्राकृत अवस्था के कारण आज घोर दुःख में पड़ा हुआ मनुष्य कल सुख की कल्पना-मात्र से उसे भूल जाता है। यहाँ के मनुष्य सब ऐसे ही दिखते हैं। सबके चेहरे पर प्रसन्न संसार की माया, प्रशंसा, तृप्ति ही विराजमान है। कल जो तूफ़ान उठा था, जिसमें उनके भरे हुए कितने ही जहाज डूब गए थे, आज उस क्षति का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नहीं। वे पहले ही-जैसे सुखी, निश्चिंत हैं। प्रकृति ने, जिसने बाहर से उनका सब कुछ छीन लिया था, आज भीतर से और बाहरवाली विराट् प्रकृति से, जिसके भोग में सबका बराबर हिस्सा है, उन्हें सभी कुछ दे दिया है— वे अभाव का अनुभव नहीं करते। कितने कष्ट हैं यहाँ, कितनी कमजोरियों से भरा हुआ संसार है यह, पद-पद पर कितनी ठोकरें लग चुकी हैं, पर सब लोग फिर भी समझते हैं—वे अक्षत हैं, वे ऐसे ही रहेंगे; तभी पूरी प्रसन्नता से हँसते हैं, और

कुछ भोजन न पहुँचाया जायगा, तो गाँव के लिये हानिकर है, इस विचार के, धर्म को प्राणों से प्रिय समझनेवाले कुछ लोग दूध, मिठाई और भोजन आदि थालों में सजाकर ले गए ; पर स्वामीजी ने गंभीर होकर कहा—"तुम लोगों की सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं दिन को भोजन नहीं करता, शाम को तुम्हारे गाँव जाने पर करूँगा, अभी मैं एक विशेष कार्य में दत्तचित्त हूँ, तुम लोग लौट जाओ।"

लोग प्रणाम कर, स्वामीजी की प्रोज्ज्वल यौवन की शिखा को राख में ढकी हुई कुहरे के भीतर से सूर्य की सुंदरता देखकर मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए चले गए। स्वामीजी के गाँव जाने पर लोग उनके दर्शन के लिये एकत्र होने लगे। संध्या के बाद अधूरी आकांक्षावाली स्त्रियों ने मौक़ा मिलने पर दर्शन करेंगी, सोच रक्खा था। मनहारिन के मुँह से जैसी तारीफ़ वे स्वामीजी की सुन चुकी थीं, उन्हें विश्वास हो गया था कि उनकी ज़रा-सी प्रार्थना कभी भी स्वामीजी की कृपा होने पर अधूरी न रह जायगी। जिसके पति को खबर न थी, और जो स्वामीजी से कोई कामना पूरी कर लेना चाहती थीं, पति के आते ही स्वामीजी की अनर्गल तारीफ़ कर दर्शन के लिये भेज दिया, और लोगों के जाने पर ख़ुद भी जायगी, यह आज्ञा ले ली।

एक तरफ़ गाँव के एक बड़े शिवालय में स्वामीजी ठहरे हुए हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ। अस्ताचल चलनेवाले सूर्य की

किरणों से शिशिर के शीश पर सुनहला ताज रक्खा हुआ है। खगकुल अपने आवास की डाल पर स्नेह-कलरव द्वारा मातृ-स्वरूपा प्रकृति की रानी की सांध्य वंदना कर रहे हैं। नवीन शस्य और सजल शोभा दिगंत तक फैली हुई मनुष्यों के जीवन की छोटी-बड़ी कल्पनाओं की तरह पृथ्वी की गोद पर लहरा रही है। मधुर मोहक स्वप्न की तरह, मनुष्य के मन को अपनी स्थितिवाली संकीर्णता से भुला, माया-मरीचिका में दूर-दूरतर ले जाकर सुख और ऐश्वर्य का पूर्ण अधिकारी बना रही है। प्रकृति की इसी प्राकृत अवस्था के कारण आज घोर दुःख में पड़ा हुआ मनुष्य कल सुख की कल्पना-मात्र से उसे भूल जाता है। यहाँ के मनुष्य सब ऐसे ही दिखते हैं। सबके चेहरे पर प्रसन्न संसार की माया, प्रशंसा, तृप्ति ही विराजमान है। कल जो तूफ़ान उठा था, जिसमें उनके भरे हुए कितने ही जहाज़ डूब गए थे, आज उस क्षति का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नहीं। वे पहले ही-जैसे सुखी, निश्चिंत हैं। प्रकृति ने, जिसने बाहर से उनका सब कुछ छीन लिया था, आज भीतर से और बाहरवाली विराट् प्रकृति से, जिसके भोग में सबका बराबर हिस्सा है, उन्हें सभी कुछ दे दिया है— वे अभाव का अनुभव नहीं करते। कितने कष्ट हैं यहाँ, कितनी कमज़ोरियों से भरा हुआ संसार है यह, पद-पद पर कितनी ठोकरें लग चुकी हैं, पर सब लोग फिर भी समझते हैं—वे अक्षत हैं, वे ऐसे ही रहेंगे; तभी पूरी प्रसन्नता से हँसते हैं, और

खूब खुलकर बातचीत करते हैं। वर्षा की बाढ़ का तरह कितने प्रकार के दुःख-कष्ट उन्हें उच्छ्वसित कर, डुबा-डुबाकर चले गए, पर वे दुःख-जल के हटने के बाद कुछ ही दिनों में सूखकर फिर वैसे ही ठनकने लगे। साधु-दर्शन के लिये तन-मन-धन से आए हुए इन लोगों के प्रमाद-स्वर में तन, मन और धन की ही गुलामी के तार बज रहे हैं। बातें ईश्वर की करते हैं, पर ध्वनि संसार की होती है कि हम बड़े मौज में हैं—ईश्वर की बातचीत खाते-पीते हुए सुखी मनुष्यों का प्रलाप है।

अजित यही सब, चुपचाप बैठा हुआ, सोच रहा था। लोग स्वामीजी की तारीफ़ कर रहे थे कि ज्ञान का क्या कहना है, नहीं तो स्वामीजी की उम्र अभी संन्यास लेनेवाली न थी। साथ-साथ थोड़ी उम्र में योग लेनेवाले शुकदेव, नारद, ध्रुव आदि ऋषियों और तपस्वियों के उदाहरण एक के बाद दूसरा पेश करता जाता, बातचीत का सिलसिला धर्म, इतिहास, योग और दर्शन के भीतर से न टूटता था।

जब अपनी वर्तमान स्थिति, सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक हीनता और धार्मिक पराधीनता पर किसी ने भी प्रश्न न किया, तब घबराकर और अयोग्यों को रत्न-राशि देने पर दुरुपयोग के विचार से उन्हीं की मानसिक स्थिति के अनुकूल अजित उपदेश-मिश्रित बातें कहने लगा।

"आजकल गृहस्थों के घर में शुद्ध धान्य नहीं होता, इस-लिये साधु को भोजन से पाप स्पर्श करता है, संस्पर्श दोषवाली

कथा तो तुम लोगों को मालूम होगी ?" स्वामीजी ने गंभीरता से कहा।

लोग एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे। सुगंध पुष्प में भी कीट होते हैं। वहाँ ऐसा कोई न था, जिसमें किसी प्रकार का भी धब्बा व्यक्तिगत या पारिवारिक न लगा हो; किसी के पिता पर, किसी की माता पर, किसी की बहन पर, किसी के अपने शरीर पर। सब लोग चौकन्ने हो गए, और अपने साथ-साथ दूसरों के चरित्र की चित्रावली देखने लगे, मन में भरे हुए, तकरार होने पर जिसे गाली की तरह दागते थे। मन प्रशमित हो जाने के कारण सब लोग स्वामीजी की दूरदर्शिता के क़ायल हो गए।

यद्यपि अजित को लोगों की मुख-मुद्रा से अपने सिद्धांत की सचाई मालूम हो गई, फिर भी अकारण उसने इधर को रुख नहीं किया। एक स्थविर मनुष्य की ओर देखकर पूछा—"आप लोग यहाँ कैसे रहते हैं ?"

"बड़े अच्छे रहते हैं महाराज, आपकी कृपा से कोई दुःख नहीं।" हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से उसने उत्तर दिया।

"आज यही नम्रता शक्ति-क्षीणता का कारण है।" मन-ही-मन अजित ने सोचा—"ये अपने दुःखों को कहने से भी घबराते हैं, सहते हुए मर जाना इन्हें स्वीकार है, कितना पतन है यह !"

कुछ इधर-उधर की बातें हुईं। शाम हो गई थी। अजित ने अपने कर्म-कांड में लगने के लिये कहा। लोग उठकर चले।

रात क्रमशः घनीभूत होने लगी। अजित का दिखाऊ कर्म-कांड पूरा हो गया। संस्पर्श-दोष के विषय पर जैसी बातचीत स्वामीजी ने की थी, आनेवाले लोगों में से किसी को भी स्वामीजी के लिये भोजन भेजवाने की हिम्मत न हुई। क्योंकि कहीं स्वामीजी ने संस्पर्श-दोषवाला हाल लोगों से बयान कर दिया, तो नाक जड़ से कट जायगी, यद्यपि उनकी नाक गाँव के बाक़ी सभी लोगों के मन के हाथों कटी ही रहती थी—एक दूसरे की नाक गदोरी पर रखकर दिखाते हुए एक दूसरे से बातचीत करते हों—ऐसा भाव रहता था।

यह स्पर्श-दोषवाली व्याख्या स्त्रियों के कान तक न पहुँची थी। पहुँचती भी, तो भी इतना व्यापक अर्थ शायद वे न लगातीं, यद्यपि दूसरों को इस दोष में पतित देखने की वे ही अधिक अभ्यस्त थीं। इसलिये न लगातीं, क्योंकि उन्हें स्वामीजी से वरदान लेना था।

कुछ रात बीतने पर गाँव से कुछ स्त्रियाँ स्वामीजी के दर्शनों के लिये चुपचाप गईं। जहाँ स्वामीजी टिके हुए थे, वहाँ तक जाने में कोई भयवाली बात न थी। एक पहर से कुछ अधिक रात तक स्वामीजी के पास स्त्रियों की

भीड़ रही। उनका चढ़ाव स्वामीजी उन्हीं की पत्तलों में धूनी के एक बग़ल रखवाते गए, और राख उठा-उठाकर हर प्रार्थना की अचूक दवा के तौर पर चुपचाप देते रहे। बड़े भक्ति-भाव से राख आँचल के छोर में बाँध-बाँधकर स्त्रियाँ घर लौटती रहीं।

रात डेढ़ पहर बीत गई। चारों ओर गाँव में सन्नाटा छा गया। लोग घरों में सो गए। अजित भविष्य के छिपे हुए चित्र को कल्प-शक्ति से तपस्वी की तरह प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न कर रहा। पर चारों ओर उसे अंधकार-ही-अंधकार देख पड़ता है। ऐसे समय उसी की कल्पना मानो नारी-रूप ग्रहण कर भक्त के सामने श्यामा की तरह आकर खड़ी हो गई।

स्वच्छ-सफ़ेद वस्त्र में अकेली एक युवती स्त्री को सामने खड़ी हुई देख अजित की नस-नस में रक्त-प्रवाह तेज़ हो गया। इसका क्या कारण, जो इतनी रात को यह युवती स्त्री यहाँ आई? अपने को सँभालकर दृढ़ स्वर से पूछा—"तुम कौन हो?" युवती धीरे-धीरे बढ़कर उसके निकट आई, और भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

"महाराज, मेरा नाम राधा है," उठकर, हाथ जोड़कर कहा—"शोभा मेरी दीदी है, जब से गई, उसका पता नहीं मिला। आप तो जानते हैं, मनहारिन मौसी कहती थीं, बताइए।"

राधा के कंठ की सहानुभूति से अजित को मालूम हो गया

कि यह स्नेह-पीड़ित होकर शोभा का पता मालूम करने आई है।

"तुम्हारी कैसी दीदी है ?" स्वामीजी ने पूछा।

राधा सिसक-सिसककर रोती हुई धीरे-धीरे कहने लगी कि वह शोभा के यहाँ टहल करती थी, शोभा के पिता-माता का स्वर्गवास हुआ, उसे महादेव गाँव के तअल्लुक़ेदार के यहाँ धोखे से ले जाना चाहता था, पर राधा को अपने पति से ख़बर मिली, उसने शोभा से कहा, उसी रात को वह ग़ायब हो गई—बग़ीचे-बग़ीचे न-जाने कहाँ जाकर छिप गई है, इसके बाद राधा कानपुर कुछ दिनों के लिये गई थी, पर वहाँ शोभा का पता न मिलने से जी ऊबा, तो चली आई, यहाँ आने पर उसे मालूम हुआ कि उसके स्वामी उसे लेने के लिये आए थे। एक-एक बात अजित पूछता गया और राधा कहती और आँसू पोंछती गई।

राधा का ऐसा प्रेम देखकर अजित अपने को छिपा न सका। कहा—"राधा, मैं संन्यासी नहीं हूँ, तुम्हारी ही तरह शोभा की खोज करनेवाला उसके पति विजय का एक मित्र अजित हूँ। यदि मैं कभी शोभा का पता लगा सका, तो पहचान के लिये तुम्हें ले जाऊँगा। यह भेद किसी से जान रहने तक कहना मत। अब मुझे वह बग़ीचा भी दिखा दो, जिससे होकर शोभा गई थी।"

वह स्वामीजी नहीं, शोभा के पति विजय का मित्र अजित

है, उसकी शोभा दीदी को खोजता हुआ आया है, सुनकर राधा को शोभा के मिलने का सुख हुआ। मित्र का मित्र, पुरुष हो, स्त्री, मित्र ही है। कितना स्नेह मिलता है ऐसे मित्र से! राधा कली-कली से खुल गई। राजी हो, बाहर-बाहर, गाँव के रास्ते छोड़कर वासुदेव बाबा के पास अजित को ले चली। कितना सुख एक साथ चलकर उसे मिल रहा है, अनुभव कर रह जाती है।

---

कई रोज़ हो गए, स्वामीजी नहीं लौटे। वीणा अपने ऊपर होनेवाले तअल्लुक़ेदार के अत्याचार की रोज़ शंका करती और वीणा के तार की ही तरह काँप उठती है। उसका सहृदय भाई ब्रजकिशोर भी उसके लिये सोच में रहता है। विधवा कितनी असहाय और अनावश्यक इस संसार के लिये है! वीणा सोचकर, रोकर, आप ही आँचल में आँसू पोंछ लेती है—"क्या विधवा-जैसी दुखी विधाता की दूसरी भी सृष्टि होगी, जो सखियों में भी खुले प्राणों से बातचीत नहीं कर सकती, भोग-सुखवाले संसार के बीच में रहकर भी भोग-सुख से जिसे विरत रहना पड़ता है, आँख के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टि-हीन होकर रहना पड़ता है?"

कैसे दो परस्पर विरोधी संग्राम वीणा के जीवन में छिड़े हुए हैं! एक ओर तो मरुस्थल के पथिक का-सा चित्त सदैव व्याकुल है, दूसरी ओर उसके जीवन की अदृश्य अप्सरा, अपनी सोलहो कलाओं से विकसित, उसके हृदय के तारों को खींच-खींचकर चढ़ा रही है—प्रति जीवन की रंग-भूमि में जैसे मृदु चरण उतरकर अपनी वासना-

विह्वल नई रागिनी गाया करती है, गाना चाहती है ; यह ज्ञान नहीं कि यह विधवा है—इसके उज्ज्वल वस्त्र पर काले छींटे पड़ेंगे—जीवों को साँस-साँस पर पैदा हुई प्राण-प्रियता में बाँधकर चिर-अधीन कर रखनेवाली प्रकृति देह की विटपी को वासंतिक पृथुल-पल्लव-भार, सुमनाभरण, सौरभ-मद से भर रही है। मनुष्यों के क़ानून का कोई मूल्य होता, यदि वह पूर्ण के लिये पूर्ण कुछ होता, तो प्रकृति भी उस मर्यादा को मान-कर, उसके सामने आँखें झुकाकर चलती। चिर-अभ्यास से बँधा वीणा का रुचिर मन भीतर के इस अपार उत्सव में इसीलिये आप-ही-आप सम्मिलित हो जाता है, जब कि यह मन की ही एक स्वतंत्र रचना है, जहाँ वीणा को उसने संसार के यज्ञ में श्रेष्ठ भाग लेने के योग्य बना दिया है।

तब वीणा अपने एकमात्र आश्रय स्वामीजी को सोचकर, उनकी निश्चल-निश्छल सहानुभूति में डूबकर, स्वप्न के भीतर जैसे मंद-पद-चाप प्रणय से हिलते हृदय से साथ-साथ फिरती हुई स्नेह और सौंदर्य की अपलक आँखों से देखती रहती है। स्वामीजी को वह क्यों प्यार करती है, वह नहीं जानती ; वह प्यार करती है, किसी से कह नहीं सकती ; प्यार न करे, ऐसा नहीं हो सकता। स्वामीजी के हृदय में उसके लिये क्यों सहानुभूति पैदा हुई ?—वह विधवा है, इसलिये उसका स्वामी उसकी दृष्टि से सदा के लिये ओझल हो गया है—वह कृपा की पात्री है, इस कारण ; और स्वामीजी मन से उसे

फिर विवाह कर सुखी होने की आज्ञा देते हैं—इतनी उदारता उसके लिये जब वह दिखा चुके हैं, तब उसके हृदय के देवता उनके लिये अनुदार कब होंगे ? जिन्होंने स्वामीजी के भीतर से उसे इतना दिया था, वे ही उसके भीतर से स्वामीजी को इतना दे रहे हैं।

दिन ढलते-ढलते खबर मिली कि स्वामीजी आ गए। वीणा दूसरों के अश्रुत मधुर स्वर से बज उठी। व्रजकिशोर स्वामीजी के पास गया।

"कोई नई बात तो नहीं हुई ?" आग्रह से अजित ने पूछा।

"नहीं स्वामीजी, पर शंका है, और कोई तअज्जुब नहीं, जब हो जाय," व्रजकिशोर ने दुर्बल कंठ के श्लथ शब्दों में कहा।

"मैं समझता हूँ, तुम अपनी बहन को लेकर मेरे साथ कानपुर चलो; वहाँ एक मकान तुम्हारे लिये ठीक कर दूँगा; खर्च की चिंता न करो ; खर्च मैं देता रहूँगा ; पर एक भेद मत खोलना ; मैं उन्नाव उतरकर, दूसरी गाड़ी से आकर तुम्हें मुसाफिरखाने में, सादी पोशाक में, मिलूँगा ; वहाँ तुम्हारा बंदोबस्त ठीक कर मुझे फिर यहीं लौट आना है; पर स्थायी रूप से इस गाँव में न रहूँगा ; तुम कुछ और मत सोचो ; मैं तुम्हारी ही तरह एक मनुष्य, तुम्हारा मित्र हूँ। जाओ, आज ही वाली गाड़ी के लिये तैयारी कर लो।"

व्रजकिशोर सूख गया। पूछा—"आपका नाम ?"

"मेरा नाम अजित है ; पर किसी से कहना मत।"

ब्रजकिशोर चला गया। दूसरे दिन वीणा ने कानपुर-स्टेशन पर देखा, स्वामीजी स्वामीजी नहीं, एक सुंदर नवयुवक हैं।

वर्षा के घुँघराले, काले-काले, दिगंत तक फैले हुए बाल धीमी-धीमी हवा में लहरा रहे हैं। उसने सारे संसार को सुख के आलिंगन में बाँध लिया है। प्रसन्न-मुख जड़ और चेतन प्रतिक्षण प्रणय के सुख में तन्मय हैं। पक्षियों के सहस्रों स्वर-भंग निस्तरंग शून्य सागर को क्षुब्ध कर-कर उसी में तरंगाकार लीन हो रहे हैं। गुच्छों में खुली-अधखुली किरणों की कलियों-सी युवती-तरुणी बालिकाएँ, जगह-जगह हिंडोरों पर झूलती हुई, इसी प्रकार जनता के समुद्र को सुहावने सावन, मल्लार, कजली और बारहमासियों से समुद्वेल कर रही हैं। मुक्ति के स्वप्न में भारत जगने का दुख भूल गया है।

दिन की इस रात में केवल प्रभाकर जग रहा है। उसी ने इस रूप की मरीचिका को आत्म-समर्पण नहीं किया। अपने कमरे में फ्रांस के विप्लव पर लिखी हुई एक पुस्तक चुपचाप बैठा हुआ पढ़ रहा है। संसार की जन-सत्ता के विचार-विवर्तनों पर दूर परिणाम तक बहता हुआ चला जाता है।

इसी समय एक वाहक के हाथ एक पत्र मिला। वाहक की चपरास देखकर प्रभाकर समझ गया, पत्र अदालत के किसी हाकिम द्वारा भेजा हुआ है। वाहक अपनी किताब में

दस्तखत करा, छाता लगाकर, दूसरे पत्र जल्द-जल्द पहुँचाने के उद्देश से चला गया। प्रभाकर ने चिट्ठी खोलकर देखी। सह० डिप्टी-कमिश्नर ज्ञानप्रकाशजी ने बुलाया है। घड़ी देखी, साढ़े चार का समय। आज ही पाँच बजे मिलने के लिये बँगले पर बुलाया है। कुछ जल-पान कर अपने साधारण पहनावे में प्रभाकर डिप्टी-कमिश्नर साहब के बँगले के लिये रवाना हो गया।

पहुँचकर देखा, एक तरफ़ कुछ आदमी बेंचों पर बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। सामने काफ़ी बड़ा, कटी हुई हरी घास का मैदान। नौकर टेनिस खेलनेवाला नेट लगा रहे हैं। प्रभाकर को पहले तो कुछ संकोच हुआ, पर मन को अँगरेज़ी सभ्यता से रँगकर धीरे-धीरे खिलाड़ियों में शरीक होने के लिये उसी तरफ़ बढ़ा। वहाँ ऐसा कोई न मिला, जिसकी आज्ञा लेता, पुनः डिप्टी-कमिश्नर साहब के वहीं रहने की संभावना दिल को सुबूत दे रही थी।

जब प्रभाकर वहाँ पहुँचा, तब वहाँ के लोगों की खास बातचीत का तार न टूटा था। दो युवतियाँ और तीन युवक बेंचों पर बैठे थे। कुछ ठहरकर, जैसे अपरिचित प्रवेश के लिये भीतर तैयार हो रहा हो, जब मौजूद लोगों ने आने का कारण नहीं पूछा, एक तरफ़, छूत से बच-बचाकर बैठ गया। एक बार देखा तो सबने, पर पूछा किसी ने नहीं।

उपस्थित लोगों का चलता प्रसंग न रुका। एक युवती

ने कुछ अत्यन्त सरल स्वर से पूछा—"हाँ तेज बाबू, गवर्नर साहब ने फिर क्या कहा?" पूछकर आँखों में हँसती हुई तेज बाबू को देखती रही।

बाबू तेजनारायण अपने नाम के सार्थक उदात्त स्वरों से, अपनी प्रतिष्ठा के मुख्य प्रचारोद्देश को छिपाकर, गौण गवर्नर साहब से मिलनेवाला प्रसंग कह चले—"गवर्नर साहब बड़े प्रेम से मिले। अँगरेज़ी सुनकर दंग हो गए। तारीफ़ भी दिल खोलकर की। कहा, ऐसी अँगरेज़ी आप बोलते हैं, उच्चारण, स्वरपात सब इतने ठीक कि विवश होकर कहना पड़ता है कि यह क्वीन्स् इँगलिश (रानी के मुँह की अँगरेज़ी) है, और हिंदोस्तानवाले अँगरेज़ी क्या बोलते हैं, अपनी नाक कटाते हैं। फिर मेरे प्रबंध की तारीफ़ की।"

"आपका प्रबंध कहाँ छपा है?" युवती ने भौंहें टेढ़ी कर परीक्षा के स्वर से पूछा।

"दी न्यू लाइट् में।" तेज बाबू ने विनय के गर्व से कहा।

"अच्छा, नाम तो इस अखबार का—अखबार है या मासिक पत्र?—अभी तक नहीं सुना।" युवती ने उसी तरह पूछा।

"साप्ताहिक है। हाल ही निकला है। खूब लिखता है।"

"अच्छा, तो यह पत्र भी गवर्नर साहब पढ़ते हैं!" गंभीर हो युवती ने अपनी की चोट छिपा ली।

"हाँ, उनके पास सभी पत्र जाते हैं।" स्वर में तेज बाबू अप्रतिभ हो रहे थे।

"हाँ, फिर ?" युवती ने उत्साह दिया।

"कहने लगे, बहुत अच्छा प्रबंध आपने लिखा है। आप जैसा धर्म चाहते हैं, आपको चाहिए कि देशी नरेशों में, ख़ासकर राजपूताने में आप इसका प्रचार करें। इससे उनको एक नई रोशनी मिलेगी। वे आधुनिक बन सकेंगे। फिर शिकार की बातचीत हुई। मुझे साथ ही लिए जा रहे थे। मैंने कहा, मैं अपनी बंदूक घर छोड़ आया हूँ, मेरा हाथ उसी में अच्छा सधा है, बंदूकों में मक्खियाँ तरह-तरह की होती हैं, इसलिये नई बंदूक से पहलेपहल निशाना ठीक नहीं लगता। सुनकर गवर्नर साहब हँसने लगे। समझ गए कि इन्हें इधर भी काफ़ी दख़ल है।"

युवती कुछ सोचकर मुस्किराई। हँसी को पीकर तेज बाबू पर बाढ़ रखती हुई अपनी संगिनी से बोली—"तेज बाबू हैरो के पढ़े हुए हैं, बराबर लार्ड घराने के लड़के इन्हें न्योते देते रहे, और ये दो हज़ार खर्चवाले न्योते का जवाब पाँच हज़ार खर्च से देते गए!"

"सब आपकी कृपा है!" बड़े नम्र भाव से तेज बाबू ने उत्तर दिया।

"कहते हैं, वहाँ के बड़े-बड़े लोभ भी आपको नहीं लुभा सके। कोई बड़ी बात नहीं थी, सिर्फ़ धर्मवाला चोला ज़रा बदल देना था, बस, लार्ड ख़ानदान की एक मिस इनसे शादी करने को एक पैर से तैयार थी।" चपला काँपकर भाव की गहनता

में छिप गई। निकलकर फिर पूछा—"आपने तो कुछ नाम भी बतलाया था ?"

"नहीं, अब उनकी शादी हो चुकी है, नाम बतलाना जरा सभ्यता के—" तेज बाबू गिड़गिड़ाए।

"हाँ-हाँ, खिलाफ होगा।" अपनी संगिनी की तरफ फिरकर युवती बोली—"यह कोई मामूली त्याग नहीं ! मैं समझती हूँ, वह स्त्री बड़ी भाग्यवती है, आप-जैसे सच्चरित्र नई रोशनी के तिलक विवाह के लिये जिसे पसंद करेंगे।"

तेज बाबू तरुणी को प्राप्त करने की प्यासी दृष्टि से देखते रहे। बार-बार आकार-इंगित द्वारा उसे समझा चुके हैं कि विवाह के योग्य वह उसे ही इस संसार में समझते हैं, और उनके ये इशारे युवती समझ भी चुकी है।

तेज बाबू जज के लड़के हैं। एकाएक उठकर खड़े हो गए, कहा—"सीधे यहीं चला आया, आज्ञा दीजिए, टेनिस-सूट बदल आऊँ। कमिश्नर साहब भी निकलते होंगे।"

"सुना है, गिरगिट दिन-भर में बहुत-से रंग बदलता है, आप तो आदमी हैं; एक रोज कोट उतारकर कमीज पहने हुए खेल लीजिए, हम लोग खिजाँ को बहार समझ लेंगी।"

"आपकी जैसी आज्ञा। पर टेनिसवाले जूते नहीं। बिना जूते के—"

"जूते आपको यहीं मिल जायँगे।" युवती की तरुणी

संगिनी हँसी न रोक सकी। दूसरे सज्जन रामकुमार और राधारमण भी मुस्किरा दिए।

रामकुमार मज़ाक़ को क़ायम रखने के विचार से बोला—"आजकल तो नंगे पैर खेलने की सभ्यता है।"

तेज बाबू ने मस्तिष्क में विशेष ज़ोर दिया। पर उन्हें याद न आया, योरप में लोगों को नंगे पैर खेलते हुए कहाँ देखा है। पर युवती के सामने, इतना योरप-भ्रमण करके भी मामूली-सी बात में अज्ञ बन जाना अपमान-जनक है, सोचकर बोले—"अभी यह प्रथा महिलाओं में ही कहीं-कहीं प्रचलित हुई है।"

"पर आप महिलाओं के पथ-प्रदर्शक जो हैं। उस रोज़ आपने कहा था।" युवती बोली—"कहीं आपने व्याख्यान में कहा है, महिलाओं को मुक्त नभ के निस्सीम प्रांगण में रहना चाहिए। क्या आपका यह उद्देश है कि वे बेचारी कभी अपने घोंसले में लौटें ही नहीं, मुक्त नभ के निस्सीम प्रांगण में उड़ती ही रहें?"

तेज बाबू लज्जित हो गए। कहा—"नहीं-नहीं, मेरा यह मतलब नहीं, मैं केवल महिलाओं की मुक्ति चाहता हूँ, और आजकल उन पर जो हृदय-हीन अत्याचार हो रहे हैं, इनसे बचाने के लिये जगह-जगह महिला-मंदिरों की स्थापना की जाय, कहा था।"

"हाँ-हाँ, मैं समझी।" युवती गंभीर होकर बोली—"गोशालाओं के तौर पर आप महिला-मंदिर खोलवाना चाहते

हैं, परंतु वहाँ की आमदनी की तरह, मुमकिन, यहाँ की रक़म भी महिलाओं की सेवा से पहले माहिलों के खर्च में सर्फ़ हो।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब आ गए। "अलका, तेज बाबू से बातें हो रही हैं" कहकर, मन-ही-मन मुस्किराते हुए दूसरी तरफ़ मुड़े। बैठे हुए लोग खड़े हो गए। मुख़ातिब होते हुए देखकर प्रभाकर बढ़ा।

अलका बैठी हुई प्रभाकर को एकटक देखती रही।

"कुछ खेल लें, फिर आपसे बातें करें।"

प्रभाकर कुछ न बोला। आत्म-सम्मान के साथ सर झुकाए हुए खड़ा रहा।

डिप्टी साहब ने पूछा—"आप तो टेनिस खेलते होंगे?"

"पहले खेलता था, अब बहुत दिनों से छूट गया है खेलना, आप लोग खेलिए।" प्रभाकर ने आत्म-सम्मान से भरी भारी विनय से कहा।

तेज बाबू इस नए युवक का खेल देखने के लिये उत्सुक हो उठे। उस मंडली में सबसे अच्छा वही खेलते थे। उन्हें स्वभावतः इच्छा हुई, इस युवक के विपक्ष में खेलकर इसे हराऊँगा, तो अलका ख़ुश होगी। अलका को वे मन से सर्वस्व अर्पण कर चुके हैं। बदले में उसका सर्वस्व चाहते हैं। अभी अविवाहित हैं, अलका की उनके साथ शादी होने में कमिश्नर साहब की भी भीतर-भीतर इच्छा है। क्योंकि

अलका सुखी रहेगी। अब अलका को वह रोज़ अपने यहाँ बुलाते हैं, और कन्या के समान ही स्नेह करते हैं। तेजनारायण को कमिश्नर साहब के इस भाव का मौन अंतःप्रेरणा द्वारा पता है।

तेज बाबू के बुलाने पर कमिश्नर साहब ने भी ज़ोर दिया, प्रभाकर ने बहुत कहा कि बहुत दिनों से खेलने की आदत नहीं, कुछ बन न पड़ेगा। पर हराने की ग़रज़ से हाथ पकड़-कर तेज बाबू बड़े आग्रह से खींचते हुए कहने लगे—"चलिए, सिर्फ़ दो गेम खेल लीजिए।"

लाचार हो प्रभाकर अपने साधारण जूते उतारकर खेलने के लिये चला, और और लोगों ने टेनिस खेलनेवाले जूते पहनकर रैकेट ले लिए। एक तरफ़ कमिश्नर साहब और तेज बाबू हुए और दूसरी तरफ़ बाबू रामकुमार और प्रभाकर।

खेल होने लगा। प्रभाकर बड़ा तेज़ खिलाड़ी निकला। अलका को प्रभाकर की सादगी और खेल बहुत पसंद आया। उसकी खिंची चितवन में प्रभाकर की प्रशंसा के शब्द लिखे थे। तेज बाबू ने बड़े क़ायदे दिखलाए, पर हारते ही रहे।

ज्ञानप्रकाशजी को प्रभाकर से ज़रूरी काम था। पोशीदा बातचीत करनी थी। इसलिये कुछ देर बाद खेल समाप्त कर दिया। तेज बाबू झेंप रहे थे। हार से बातचीत का तार कट चुका था। इसलिये युवती से उस रोज़ खेल की विशेषताएँ

बतलाने से रहित हो, अपनी मोटर पर, केवल एक अप्रतिभ विदा ग्रहण कर चल दिए।

कमिश्नर साहब ने कहा—"हम जरा आपसे बातचीत करने के लिये बाहर जाते हैं, तब तक तुम लोग यहीं रहो, इच्छा हो, तो अपनी मा के पास चली जाना। लौटकर तुम्हें भेजवा देंगे।"

अलका को ज्ञानप्रकाशजी ने स्नेहशंकरजी से कन्या-रूप माँगा था। वह निस्संतान हैं। अलका के लिये उनके और उनकी पत्नी के हृदय में वात्सल्य-रस संचरित हो आया है, देखकर स्नेहशंकरजी ने कहा था—अलका को वह अपनी ही कन्या समझें, जब तक उसकी पढ़ाई पूरी नहीं होती, तब तक स्नेहशंकरजी का उस पर उत्तरदायित्व है। इसी स्नेह से ज्ञानप्रकाशजी रोज एक बार अलका को मोटर भेजकर बुला लिया करते हैं। पहले वह कभी-कभी आती थी। अब स्नेहशंकरजी ने स्वेच्छा-पूर्वक आने-जाने में उसे स्वतंत्र कर दिया है।

"आप जाइए, मैं शांति को छोड़ आने के लिये जाती हूँ, यहीं तो घर है, जब तक आप लौटेंगे, लौट आऊँगी।" अलका शांति के साथ चल दी। रोज आने के कारण कमिश्नर साहब को अपने मित्र से प्रभाकर के संबंध में बातचीत करते हुए उसने सुना था। प्रसंग मालूम करने का मन में कौतुक लेकर चली गई।

( १६ )

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रभाकर को मोटर पर लेकर बाहर चले गए। एक खुले मैदान में मोटर खड़ी कर दी, और नव्वाबी समय के एक जीर्ण प्रासाद के पाद-पीठ पर बैठकर बातचीत करते हुए अपने उद्देश की पूर्ति में लगे।

कुछ दिनों से लखनऊ में प्रभाकर का नाम है। साधारण श्रेणी के लोग उसे ईश्वर की तरह मानते हैं। कुलियों में शिक्षा-संगठन आदि उसने जारी कर दिया है। इसलिये दो-एक फ़र्म के मालिकों ने उसके ख़िलाफ़ दरख़्वास्तें दी हैं कि वह उनके ख़िलाफ़ कुलियों को उभाड़ा करता है। ज्ञानप्रकाशजी यह सब दबाने के प्रयत्न में हैं।

"आप व्यर्थ अपनी जिंदगी बरबाद कर रहे हैं। आपको बहुत अच्छी नौकरी मिल सकती है, अगर मैं सिफ़ारिश कर दूँ, और मैं कर दूँगा, आप सिर्फ़ अपनी तरक़्क़ी के रास्ते आ जाइए।"

इतने आग्रह से डिप्टी-कमिश्नर साहब को अपनाते हुए देखकर प्रभाकर के होठों पर मुस्किराहट आ गई। पर धीरे-धीरे गंभीर हो गया। एक लंबी साँस छोड़ी। फिर नज़र उठाकर कोई दबाव न डालनेवाली, गांधार, मध्यम, पंचम आदि

स्वरों के आरोह-अवरोह से रहित, बिलकुल बराबर आवाज़ में कहा—"अच्छी नौकरी मिलने पर भी तरक्की का तो कोई भी कारण मुझे नहीं देख पड़ता।"

"क्यों ?" आँखें स्फारित, साश्चर्य कमिश्नर साहब ने पूछा। उनके मुख की रेखाओं पर चाँदनी पड़ रही थी, जैसे कुछ सोचकर अपनी सदा की सुकुमार हँसी हँस रही हो, कठोर मनोभाववाले की बिगड़ी हुई सूरत अपने कोमल प्रकाश से दूसरों को प्रत्यक्ष करा रही हो।

प्रभाकर ने कमिश्नर साहब के मुख की ओर नहीं देखा, केवल उनकी आवाज़ तोल रहा था, कहा—"नौकरी से जो रुपए मिलते हैं, वे अंक में जितने ज्यादा होते हैं, देश के आर्थिक विचार से वे दशमिक विंदु से उतने ही इधर होते हैं।"

ऐसा अद्भुत आर्थिक विचार आज तक कमिश्नर साहब ने न सुना था। प्रभाकर का मतलब वह कुछ भी न समझ सके। आश्चर्य की बढ़ी हुई मात्रा में एक यथार्थ जिज्ञासु की तरह पूछा—"किस तरह ?"

"यह तो बहुत साधारण विचार है।" प्रभाकर बोला—"मुझे जो अर्थ मिलता है, उसकी आमदनी का कारण भी मैं देख लूँ, मेरा फ़र्ज़ है। देश की समष्टि-रूप आमदनी का हिसाब 'एक' से लगाइए। आप जानते हैं, यह संख्या उसी दिन दूसरे के साथ गई, जिस दिन देश दूसरे के हाथ

गया। इस 'एक' की प्राप्ति जब तक नहीं होती, तब तक आमदनीवाला रुख भी 'एक' से उधर नहीं हो सकता। देश को अपने हाथ रखनेवालों ने संन्यास नहीं लिया, संन्यास वास्तव में देशवालों के साथ है, जो दिया हुआ पाते हैं। दान भी कैसा कि देश के संन्यासियों को पुश्त-दर-पुश्त उसका व्याज भी देना पड़ता है। बात यह कि देश की आमदनी से देश का खर्च नहीं चलता, इसलिये यहाँ के 'एक' को हाथ में रखनेवाले, 'एक' की सहायता से दो, तीन, चार करते हुए, संपत्ति बढ़ाकर, माल तैयार कर, बेचकर, मुनाफ़ा लेकर भी तुष्ट नहीं होते, वही मुनाफ़ा देश की रक्षा के लिये क़र्ज़ देकर अचल रुपए से चल व्याज भी वसूल करते हैं। अब शायद आप समझ गए कि किस तरह देश की आमदनी दशमिक बिंदु से इधर है। एक बात और कहूँ, जब पाट बेचनेवाला देश पाटांबर पहनेगा, तब आमदनी निस्संदेह दाहनी तरफ़ बढ़ेगी, और वैसे पाटांबर पहनकर पूजार्चा करने पर इष्ट-देव भी भक्तों को बेवक़ूफ़ ही समझते हैं। जब तहसील रुपयों में बाँध दी गई, और पैदा हुई रक़म में बराबर घट-बढ़ लगी रही, बल्कि पैदावार घटती ही रही, और बाज़ार तत्काल रुपयों में लगान देनेवाले किसानों के हाथ न रहा, तब समझ लेना आसान है कि आमदनीवाला किस तरफ़ का पलड़ा उठा हुआ है।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब निर्वात मरुस्थल की तरह स्तब्ध,

निस्तृण-तरु शिला-खंड-जैसे शून्य-मन बैठे रहे। जैसा ज्ञान उनकी अंतःक्रियाओं से पैदा हुआ, हृदय ने वैसी ही सलाह भी दी—"तुम सरकारी अफ़सर हो, तुम्हें अपना ही धर्म पालन करना चाहिए। तुम सरकार का नमक खाते हो।" प्रभाकर के निकट इन विचारों को दूसरा ही रूप मिलता। नमकवाली उसकी व्याख्या सुनने लायक़ होती। पर कमिश्नर साहब के मनोभाव उन्हीं तक परिमित रहे।

बनावटी सारल्य में स्वर को रँगकर प्रभाकर से उन्होंने कहा—"देखिए, हम लोग आपके साथ नहीं, ऐसी बात नहीं; पर कोई काम एक दिन में तो होता नहीं। अभी कई सदियाँ हमें दूसरे देशवालों के मुक़ाबिले सर उठाने में लग जायँगी। तब तक न आप रहेंगे, न हम। अगर कुछ भी सुख देश की स्वतंत्रता का न भोग पाए, तो हाथ-पैर मारना वाहियात ही तो हुआ?"

प्रभाकर फिर मुस्किराया। कहा—"आप बुज़ुर्ग हैं। मैं आपको उपदेश देनेवाली नीयत से तो कुछ कह नहीं रहा, केवल अपने विचार आपसे ज़ाहिर कर रहा हूँ। जब हम अपने सामने और अपने ही लिये भोग-सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तब स्वार्थ की ही वह बढ़ी हुई मात्रा है। देश के लिये ऐसा विचार समीचीन कदापि नहीं। भोग कोई भी करे, हमें कार्य करना चाहिए। सुख और पूरी स्वतंत्रतावाला सुख हमें कार्य में अवश्य प्राप्त होगा, ऐसा मनोवैज्ञानिक नियम है। जब

विशद भावों की जल-राशि पीछे से धकेलती है, तब स्वच्छ तोय-तरंगों की गति में भी मुक्ति का आनंद है, चाहे वह समुद्र से न भी मिले, या उसके कुछ शीकर ग्रीष्म से तपकर शून्य में लीन हो जायँ। इसी सरिता की तरह जीवन की ठीक-ठीक प्रगति में मुक्ति का चिदानंद प्राप्त होता रहता है। आप देखेंगे, संसार में अणु-अणु इसी मुक्ति की ओर अग्रसर हैं। यही सृष्टि का अंतरतम रहस्य भी है। फूल कितना कोमल होता है, पर वह काठ की काया के भीतर से निकलता, कितना अँधेरा पार कर वह प्रकाश के लोक में क्षण-भर को हँसकर मुक्त होने के लिये आता है। इसी प्रकार मुक्ति के यज्ञ में भी मनुष्य अपना मंत्र पढ़कर, आग लेकर ही रहता है। यही उसका चिरंतन रहस्य है।"

एक बार इधर-उधर चल-दृष्टि कमिश्नर साहब ने देखा, फिर मुस्किराते हुए कहा—"आप दिल के सच्चे हैं। मैं आपको समझाता हूँ। जिन लोगों को वकालत और दूसरे-दूसरे पेशों से नाम मिल चुका है, वे चाहते हैं, लोगों को अपने हाथ की पुतली बना रक्खें, और इस तरह सरकार पर रोब जमाएँ। आप उनकी वरगलानेवाली बातों में न आइए। यह देखिए कि वे क्या-क्या कर चुके हैं, और अब क्या-क्या कहते हैं। बस, आपकी आँख खुल जायगी। जब काफी रुपया हो जाता है, तब मामूली लोगों को उभाड़कर, बग़ैर दूर तक समझे और समझाए हुए, एक नई राह निकालकर जिस पर

कि एक क़दम उठाना भी मुश्किल हो, लोग लोगों की आँखों के तारे बनना चाहते हैं और साहबों के बराबर चलना। अगर आपको उन्हीं का रास्ता पसंद है, तो आप उनकी पहली राह से होकर गुजर आइए, मैं तो ऐसा ही कहूँगा।"

"आप दुरुस्त फ़र्माते हैं। कोई नेता ऐसा नहीं, जिसके पीछे, पूँछ में, नाम की बला गोबर की तरह न लगी हो। पर मैं उनके उतने ही त्याग को देखता हूँ, जितना उन्होंने देश के लिये किया है। उनके अलावा इस देश के तथा दूसरे देश के सच्चे आदमियों को भी मैं अपना आदर्श समझता हूँ। एक सच्चा आदमी संसार-भर के लिये आदर्श है।"

"फिर मैं कहता हूँ, आदर्श को देखने से पेट नहीं भरता। सरकार ने पेटवाली जो मार हिंदोस्तान को दी है, अभी सदियों तक लोग पेट पकड़े रहेंगे। अगर आप उन्हीं के भरोसे पर पेट पालते रहें, तो यह कौन-सी बड़ी बात हुई? बल्कि ख़ुद कुछ पैदा कर उनकी झोली में डाल सकें, तो आपका यह काम बेहतर होगा।"

प्रभाकर चुप हो गया। सोचा, किसानों के साथ त्यागियों के सहयोग से ज्ञान और अर्थ का सहयोग होता है, और इसी तरह देश की उभय प्रकार की दशा सुधर सकती है, यद्यपि अभी किसानों में कड़े पैर खड़े होने की हिम्मत नहीं हुई, न देश में त्यागियों का इधर रुख़ हुआ है, पर यह सब इनसे कहने से फ़ल क्या, यह अपने भाव की वह सूखी लकड़ी

हैं, जो दूसरी तरफ़ झुक नहीं सकते या झुकाने पर टूट जायँगे। प्रभाकर को चुपचाप देखकर कमिश्नर साहब ने सोचा कि बात चोट कर गई। रंग और गहरा कर देने के विचार से कहा—"चलिए, आज हमारे यहाँ भोजन कर लीजिए।"

रास्ते में कमिश्नर साहब बोले।नहीं। सोचा, चारे पर आई हुई मछली बातचीत से भड़ककर निकल जायगी। इसलिये उपदेश की वंसी पकड़े हुए एकटक चारा खाती हुई मछली पर ध्यान लगा रक्खा। नहीं समझे कि कभी काँटे में न फँसनेवाली, बग़ल से, छोटी मछली के चारा खाने के कारण तरेरा हिल रहा है। अपनी-अपनी मौन कल्पना के भीतर दोनों अपने-अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे।

अलका सामनेवाले कमरे में बैठी, तस्वीरों की एक किताब लिए हुए उलट-उलटकर अपनी पसंद के चित्र देख रही थी। इसी समय कमिश्नर साहब बँगले पहुँचे, और बैठक में प्रभाकर को बैठने के लिये कहकर खुद कुछ देर के लिये भीतर गए। बड़े ग़ौर से अलका ने प्रभाकर को देखा। उसे जान पड़ा, आज लड़ाई में कमिश्नर साहब की विजय हुई। क्योंकि प्रभाकर के मुख की प्रभा क्षीण थी। लखनऊ के राजनीतिक आकाश में इधर ६ महीने से प्रभाकर खूब तप रहा है, और वह गर्मी कर्मचारियों को असह्य है, यह खबर अलका को मालूम थी। प्रभाकर को अच्छी नौकरी में बाँध लेने की

सद्भावना सविचार ज्ञानप्रकाश को स्नेहशंकर से मिली थी। अलका अपने पिता से यह सलाह देने के कारण नाराज़ हो गई थी। तब गूढ़-मर्म-वेत्ता पिता ने कहा था—"जो गिरना नहीं चाहता, उसे कोई गिरा नहीं सकता; वल्कि गिराने के प्रयत्न से उसे और बल देना होता है।"

प्रभाकर को उपदेश दिए विना अलका से न रहा गया। पर विना बातचीत के कुछ कैसे कहे। प्रभाकर सर झुकाए हुए चुपचाप बैठा था। अलका अधीर होकर स्वगत कहने लगी—"पिंजड़े में रहना बड़ा अच्छा, चारा आप मिलता है, बेचारा तोता बाज़ फटकारने की मिहनत से बच जाता है!" कहकर ग्रीवा-भंगिमा कर विषम आँखों से देखकर कुछ द्रुत दूसरे कमरे में चली गई। प्रभाकर को मतलब समझते हुए देर न लगी। इस युवती कुमारी के प्रति उसकी दृष्टि सम्मान के भाव से झुक गई, यद्यपि तब भी वह प्रभाकर ही था।

इसी समय कमिश्नर साहब भी आए। अलका न थी। एक बार इधर-उधर देखकर बैठ गए। सामने की गोल मेज़ पर प्रभाकर के लिये भोजन का प्रबंध किया जाने लगा।

प्रभाकर भोजन कर रहा था; कमिश्नर साहब एक दृष्टि उस अद्भुत मनुष्य को सकौतुक देख रहे थे, और उसे फाँस लाने के सुख में लीन थे। "आप ग्रेजुएट अवश्य होंगे?" कमिश्नर साहब ने पूछा।

"जी हाँ।" प्रभाकर ने उत्तर दिया।

"माफ़ कीजिएगा, आपके नाम के साथ संवाद-पत्रों में आपकी डिगरी नहीं छपती, इसलिये पूछा।"

प्रभाकर कुछ न बोला। इस पर कोई प्रश्नोत्तर हो भी नहीं सकते थे। प्रभाकर सोच रहा था, अब बहुत जल्द जेलख़ाने की नौबत आ रही है।

भोजन समाप्त कर चुका। हाथ-मुँह नौकर ने धुला दिए। पान खाकर डिप्टी-कमिश्नर साहब से बिदा होने लगा। स्वभावतः कमिश्नर साहब ने पूछा—"तो अब क्या विचार है?"

"कल क़ुलियों की हड़ताल का फ़ैसला देखना है कि मालिक लोग क्या करते हैं।" कहकर, एक छोटा-सा नमस्कार कर बाहर चला गया। फाटक के पास तक गया, तो पीछे से कोमल स्त्री-कंठ की पुकार सुन पड़ी—"ठहरिएगा ज़रा।"

अलका तेज़ क़दम प्रसन्न बढ़ती आ रही है। आती हुई बोली—"मैं आपके विचारों से सहमत हूँ, आपको बधाई देती हूँ।"

"आपकी कृपा।" कहकर, सविनय सर झुकाकर प्रभाकर बढ़ने को हुआ कि अलका ने उत्कंठा से कहा—"आप 'स्नेह-भवन' ऐबट रोड अवश्य आइएगा। और आपका पता?"

प्रभाकर ने पता बतला दिया।

---

अजित ने अपने मित्रों में ब्रजकिशोर को परिचित कर दिया। बहुत-से उनमें व्यवसायी थे। उन्होंने बाज़ार में ब्रजकिशोर की दलाली चलवा देने का वचन दिया, और पूरा भरोसा भी कि दो-तीन आदमियों के गुज़र को वह महीने-भर में कमा लिया करेगा। वहीं अजित को मालूम हुआ कि कई बार उसके यहाँ से खोजने के लिये कानपुर लोग आ चुके, एकाएक उसके पिता को लक़वा मार गया है। अजित के चित्त की स्थिति इस संवाद से चिंताजनक हो गई। वह अब के लौटकर वीणा को आपदों से मुक्त देख सुखी होकर, दूने उत्साह से शोभा की तलाश तथा तअल्लुक़ेदार साहब का मुक़ाबला करना चाहता था। पर लाचार हो गया। ब्रजकिशोर तथा वीणा से पिता की बीमारी का हाल कहकर घर जाने के लिये बिदा माँगी। वीणा मौन, पलकें झुकाए हुए, खड़ी रही, हृदय से बार-बार मिलते रहने की प्रार्थना कर रही थी। ब्रजकिशोर ने घर तथा पिताजी के समाचार भेजते रहने को अनुरोध किया। अजित ने भी आश्वासन दिया कि वह उनकी ओर सविशेष ध्यान रक्खेगा।

घर जाने पर अजित को संसार के प्रेम का एक शिक्षाप्रद रहस्यमय दृश्य दिखलाई पड़ा। उसके पिता धनी थे, इसलिये

कुटुंबवाले स्वयंसेवक चारों ओर से टूट पड़े, और बड़े आग्रह से सेवा करने लगे। अजित की माता इसी संसार की यथेष्ट अनुभव रखनेवाली महिला थीं। उन्हें समझने में देर न हुई कि अजित के चाल-चलन से नाराज़ उसे परित्याग करनेवाले उसके पिता की इतनी सेवा क्यों हो रही है। हर स्वयंसेवक एक ही उद्देश लेकर घर से चला था। यहाँ ऐसे बहुत-से एक ही भाववाले एकत्र हो गए, तब सेवा में सुविधा के स्थान पर असुविधा होने लगी। अजित की माता ने पति को सेवकों का मर्म समझाकर अजित को बुलाने की आज्ञा माँगी। रोग-ग्रस्त पिता को भी अंतिम बार के लिये पुत्र को स्नेहाशीर्वाद दे जाने की इच्छा हुई, और अजित को बुलाने की उन्होंने आज्ञा दे दी। पहले कई बार वह कानपुर में नहीं मिला। उद्देश से असफल हो जब-जब आदमी लौटे, कुटुंब के लोगों ने तब-तब उसके संबंध में अद्भुत-अद्भुत ख़बरें उसके पिता को सुनाईं—किसी ने कहीं अख़बार में पढ़ा था कि वह बंगाल के बाग़ियों में मिला है, और जो इधर यहाँ डकैती हो गई है, उसमें एक मुख़बिर बन गया है, और उसने अजित का भी नाम लिया है। किसी ने कहा—"तब से अजित चंबल के किनारे खोहों में पड़ा रहता है—एक बदमाश वहाँ से छूटकर आया है, वह बतलाता था।" किसी ने कहा—"पुलिस तीन बार उस पर हमला कर चुकी, पर वह पकड़ में न आया, दोनो हाथ दनादन गोलियाँ चलाता हुआ निकल गया।' आदि-आदि।

इससे पिता की व्याधि में कैसी सेवा हुई, सहज ही अनुमेय है। माता ने निकालने की कोशिश की, पर असफल हुई। सब निकट-संबंधी थे। कुछ लोगों ने खुलकर कह भी दिया कि हमारा घर है, आपको तो सिर्फ भोजन-वस्त्र पर अधिकार है। माता रोकर आँसू पोंछ लेती थीं। पुत्र का संवाद बिलकुल झूठ है, ऐसा वह नहीं सोच सकती थीं, जब कि उसके ऐसे ही चरित्र का एक प्रमाण उन्हें मिल चुका था। जब स्वयंसेवक लोग रोगी के शीघ्र मरने की प्रतीक्षा में थे, और माता डरी हुई गृहस्वामी की सतर्क सेवा में, उसी समय अजित ने दरवाजे पर अम्मा-अम्मा कहकर आवाज़ दी। माता ने पुत्र को दुखी हृदय से लगा लिया, और विपत्ति की कथा एकांत में ले जाकर सुनाई। दूसरे दिन से स्वयंसेवकगण मकान खाली कर-कर अपना रास्ता पकड़ने लगे। इतना एहसान अजित पर रखते गए कि उसके पिता की सेवा के लिये कोई नहीं था, अपना बनता काम बिगाड़कर वे आए थे।

बहुत दिनों तक पूरे दो वर्ष अजित को पिता की सेवा करनी पड़ी। अच्छे-अच्छे डॉक्टर बुलाकर उसने इलाज कराया। पर कोई फल न हुआ। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य टूटता गया। बहुत पहले ही देहांत हो चुका होता, अजित की तन्मय सेवा के कारण इतने दिन झेलते रहे। क्षीण से क्षीणतर होती हुई एक दिन सदा के लिये साँस रुक गई। यथारीति अजित ने क्रिया-कर्म किया।

पिता की बीमारी के समय दवा के लिये अजित को प्रायः कुछ-कुछ रोज बाद कानपुर जाना पड़ता, वीणा से मिलने को प्राण व्याकुल, उद्ग्रीव रहते थे। रोगी की सेवा से थका अजित वीणा से मिलने पर पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करता, जैसे प्राणों के अंतःप्रदेश से एक नई विद्युत् स्फुरित होकर नस-नस को शक्त, तेज़ कर देती हो; फिर दूने उत्साह से सेवा करने को तत्पर हो जाता। स्टेशन पर उतरकर जीवन की हवा पर उड़ती हुई वीणा के हाथ की पतंग की तरह अपूर्व प्रेम से खिंचता हुआ सीधे उसी के घर जाता; व्रज-किशोर बाज़ार चला गया होता था; अकेली वीणा उच्छ्वसित हो, हँसती आँखों द्वार खोलकर स्वागत करती, घर का हाल पूछती, और पलँग पर बैठाल खुद पास ज़मीन पर बैठकर उसके प्रश्नों की सहृदय झंकार से मधुर-मधुर बजती रहती। दोनो एक साथ हँसते, एक बात पर रो देते। अजित को मालूम हो चला, वीणा उसी की, उसी के हाथ की है; वीणा का हृदय कहने लगा—वह अजित के साथ की, उसी के स्वर से ठीक-ठीक मिली हुई है। अजित चला जाता, भाई के आने पर वीणा अजित के आने की खबर देती, उसके घर के समाचार कहती। व्रजकिशोर को भी मालूम होने लगा, दोनो एक दूसरे को प्यार करते हैं। नवीन उसके जैसे खयालात बँध रहे थे, नई जो रोशनी उसे मिल चुकी थी, उसमें दो खिले फूलों का गले-गले मिलकर, एक ही हवा में, एक ही डाल पर

झूलते रहना वह देखना चाहता था। उसे विश्वास था, इस रोशनी से खुला हुआ अजित अपने पासवाली दूसरी कली को भी एक ही प्रकाश दिखा चुका है। इसलिये कभी कुछ कहकर उसने बहन का चित्त नहीं दुखाया।

एक रोज, पिता के स्वर्गवास के पश्चात्, अपने पथ के पूरे निश्चय से अजित वीणा के यहाँ गया। वीणा उसी के ध्यान में तन्मय थी।

"तुमसे एक बात पूछूँ ?" आसन ग्रहण कर अजित ने प्रश्न किया।

सरल आग्रह से वीणा प्रश्न सुनने को एकटक देखती रही।

"मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, और आज तुम्हारे भैयाजी के सामने प्रस्ताव रक्खूँगा।"

वीणा खिलकर लज्जा से जमीन की तरफ देखने लगी।

"क्या तुम्हारी सम्मति मैं जान सकता हूँ ?"

वीणा ने धीरे सर हिला दिया।

अजित ने हाथ पकड़कर उठाया। वीणा खड़ी हो गई। अजित की आँखों को विश्वास की दृष्टि से देखती रही।

उसके हाथ अपने हाथों में लिए हुए अजित ने पूछा—"अगर तुम्हारे भैयाजी ने आज्ञा न दी, तो क्या मैं आशा करूँ कि तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो ?"

"भैयाजी आज्ञा दे देंगे," वीणा धीमे स्वर, आँखें झुकाकर बोली।

"वीणा !" प्रिया की आत्मा तक पहुँचकर अजित ने कहा—"ईश्वर और तुम्हारी आत्मा को साक्षी मानकर मैंने एक हाथ से नहीं, दोनो हाथों तुम्हारे दोनो हाथ पकड़े हैं; क्या इससे बड़े दूसरे विवाह पर भी तुम्हें विश्वास है ?"

"मैं केवल आपको जानती हूँ।"

"अभी कुछ दिनों के लिये मैं देहात जाता हूँ। तुम मेरे और विजय के बीच की सब बातें सुन चुकी हो। साल-भर से अधिक हुआ, मुझे उसका संवाद नहीं मिल रहा। उसका पता मालूम करने जाता हूँ। शोभा अब शायद न मिलेगी। मैंने वहाँ उसे बहुत खोजा है। तुम सुन चुकी हो, पर वह जैसे पर मारकर कहीं उड़ गई।"

दोनो कुछ देर तक चिंता में मौन खड़े रहे।

अजित ने कहा—"अब एक इच्छा पूरी कर लेनी है। जिसने तुम्हारी एक अज्ञात बहन को संसार से लुप्त कर दिया, तुम्हें भी नीच दृष्टि से देखा; जो न-जाने कितनी स्त्रियों की आबरू ले चुका है, उस मुरलीधर को अब के मैं देखना चाहता हूँ। मेरे साथ तुम्हारे रहने की जरूरत हुई, तो तुम्हें चलना स्वीकार होगा ?"

वीणा ने अब के भी धीरे से सर हिला दिया।

उसके दोनो हाथ अजित ने हृदय से लगा लिए। मुस्किराकर कहा—"लेकिन तुम्हें यह वेश बदलना होगा।"

लजाकर सर झुका बीणा हँसने लगी।

उज्ज्वल सौंदर्य का यह लावण्य-भार एक बार, दो बार, अनेक बार देखकर, देखने की न-भरी आशा भरकर अजित बीणा से बिदा हुआ।

---

( २१ )

अजित विजय की खोज में गाँव पहुँचा। उसके आने की खबर से गाँव में हलचल मच गई। पहलेवाले स्वागत से इस स्वागत में फ़र्क़ था। तब लोगों की समझ में केवल स्वार्थ की सिद्धि सुराज का मूल मतलब था, अब वह भाव बदलकर स्वार्थ का बलिदान बन गया था। विजय को जेल होने के बाद लोगों की हृदयवाली आँखें खुलीं, उनके सामने स्वार्थ-त्याग का सच्चा दृश्य आया, तब तक वैसे चरित्र की जो निर्दोष होकर, तमाम दोषों को मौन नत-दृष्टि से क्षमा कर, फिर जगकर अपने भीतर के अँधेरे को दूर करने के लिये प्रयत्नपर होने को आत्मा में प्रोत्साहन देता हुआ कारावास वरण कर लेता है—गाँववालों में कल्पना करने की भी शक्ति न थी। बुधुआ तथा और-और लोग उसके विरुद्ध गवाही देकर जब लौटे, तब जमींदार तथा गाँववालों की तरफ़ लज्जा से देख भी न सके; न-जाने कहाँ के प्रायश्चित्त का भार उनके सर पर लद गया; सब सोचने लगे, यदि हमें सजा हो जाती!—कौन-से पाप हमारे पहले के थे, जो हम सजा के नाम से इतने घबराए कि हमें ईश्वर के न्याय का भी ध्यान न रहा, और अपने

एक सच्चे हितकारी, देवता-जैसे मनुष्य, महात्मा के खिलाफ़ गवाही दे आए।

केवल इस पश्चात्ताप से ही इति न हुई। अपनी अक़्ल के रस्से से हर गाँव के ज़मींदार बोझ की तरह कसकर सबको बाँधने लगे। जितना रुपया बाक़ी था, ब्याज और दर-ब्याज-समेत, बुरे तरीक़े से वसूल करने लगे। पुलिस उनके साथ थी। अदालत में उनकी बही चित्रगुप्त का खाता था, जिसमें अन्याय कभी लिखा नहीं जा सकता था, फिर सब असामियों के उस लिखी रक़म के नीचे निशान अँगूठा लगा हुआ था। १० की जगह २५ लिखा है, इसकी जाँच की असामियों को तमीज़ न थी। डिगरियाँ हुईं। माल नीलाम किया गया। हली, भूसा आदि रक़म-सिवा तिगुनी ली गई। किसान हैरान हो गए। जब मुसीबत-पर-मुसीबतें टूटने लगीं, कोई उपाय बचने का न रहा, और सबने देखा कि जब ज़रूरत पड़ती है, बैल की तरह ज़मींदार के हल में नह दिए जाते हैं, तब लोगों की समझ में आया, जेल जाना इससे बहुत अच्छा था; सोचा, स्वामीजी ने जो अदालत तक गिरफ़्तार होकर जाने की सलाह दी थी, बहुत ठीक थी; मुमकिन, हाकिम हमारी दशा पर ध्यान देता।

विजय से सहयोग करनेवाले जितने आदमी आस-पास के गाँवों में मुख्य थे, सब-के-सब परेशान कर दिए गए। अब आगे कभी सर उठाने की हिम्मत न रहे, इस सूत्र की

प्रचलित प्रथा के अनुसार। लड़के कुछ पढ़ गए थे। चिट्ठी लिखने की तमीज रखनेवाले वहाँ के हर गाँव में किसानों के कुछ-कुछ लड़के तैयार हो चुके थे। वे खेतों, ऊसरों और बागों में काम करते, ढोर चराते और खेलते हुए बड़ी सहानुभूति से अपने मित्रों में मिलकर स्वामीजी की याद करते। जेल होने के साल-भर तक वे लोग स्वामीजी के लिये दिन गिनते रहे। वह कहाँ, किस जेल में हैं, किसी को पता न था। पता लगाया जा सकता है, मालूम न था। स्वामीजी की आशा में एक साल पूरा हो गया। जब वह एक महीने, दो महीने, तीन-चार महीने, कई महीने तक न आए, तब बालक उदास हो, हताश हो, एक दूसरे से कहने लगे—"अब स्वामीजी हमारे यहाँ न आएँगे!"

बीरन पासी भी इस समय जेल में है। कृपानाथ ने शराब बनाते हुए उसे पकड़वा दिया है। जो मास्टर लोग पढ़ाते थे, वे भी अब तक नहीं लौटे। कोई कानपुर में खोंचा लगाता है, कोई कलकत्ते में बनियान और रूमालों की फेरी करता है, कोई किसी ऑफिस का चिट्ठीरसा हो गया है।

अजित को सब हाल मालूम हुए। विजय को सजा हो गई थी, इसीलिये उसके स्वामीजी के नामवाले पत्र वापस हो जाते थे। अब वह छूट चुका होगा, पर मालूम नहीं, कहाँ है। संभव है, उसे ढूँढ़कर, न पाकर, कोई दूसरा रास्ता पकड़ा हो। गाँववालों की हालत तथा विजय पर विचार करते हुए रात-भर उसकी आँख न लगी। स्वामीजी के मित्र आए हैं,

सुनकर गाँव के लड़कों ने आकर घेर लिया, और अपने स्वामीजी से फिर मिलने के लिये अबाध आग्रह करने लगे, मिला देने की बार-बार प्रार्थना करने लगे। विश्वास देते रहे कि अब वे स्वामीजी को पूरा साथ देंगे, क्योंकि अब वे निरे बच्चे नहीं हैं, अपने हाथ हल जोत लिया करते हैं, और स्वामीजी जहाँ कहेंगे, वे उनके साथ चलने को तैयार हैं।

बड़े कष्ट से आँसुओं को रोके हुए अजित सुनता रहा। अजित जहाँ था, वहीं खुली ज़मीन पर लड़के भी लेट गए। अजित ने घर जाकर सोने के लिये कहा, तो लड़कों ने जवाब दिया कि आमों के वक़्त वे रात-रात-भर कुएँ की पैड़ी पर पड़े रहते हैं।

सुबह को अजित चलने लगा, तब गाँव के लड़के रोने लगे। लोगों के रूखे कपोलों से आँसुओं की धारा बह चली। लोगों ने कहा—"महाराज, हम लोग मूरख हैं, गँवार हैं, हमने अपने स्वार्थ का विचार किया, ऐसे महात्मा को सज़ा करा दी; पर वह मिलें, तो हम लोगों की कर-जोड़ दंडवत् कहिएगा, और कहिएगा कि मूरखों को माफ़ कर आप ही उन्हें राह सुझा सकते हैं, आप अपनी दया दिखाने से मुँह न फेरें, नहीं तो उन मरे हुओं का कोई भी सहारा न रहेगा!" लोग अपनी-अपनी बात, ख़ास तौर से बुधुआ आदि गवाह जो थे, कहते जाते थे, और रोते जाते थे।

सामने खलिहान मिला। पटवारी लाला मातेश्वरीपरशाद

बैठे हुए पैदावार लिख रहे थे। ज़मींदार के सिपाही भी थे। लोग नहीं डरे। घुघुआ ने कहा, अब हम तुरुक से मुरुक न बनेंगे, बिगाड़ चुका, जहाँ तक हमें बिगड़ना था।

एक लड़के ने कहा, वह गृद्धराज देख रहे हैं।

लड़के पटवारी को गृद्धराज कहते हैं।

दूसरे लड़के ने कहा, रघुआ की पाटी में तीन मन कुल गेहूँ हुआ है, जिसके तेरह मन इसने, बीघे-भर के, लिक्खे हैं, कल खड़ा-खड़ा मैं देख रहा था।

गाँव के किनारे शून्य साँस भरकर अजित को लोगों ने बिदा किया। अजित ने विश्वास दिया, अगर जल्द स्वामीजी का पता वह न लगा सका, तो ख़ुद आकर उनका छोड़ा हुआ काम सँभालेगा।

तीन साल हुए, राधा के गाँव में खबर फैली, जो महात्माजी पहले आए थे, वह फिर आए हैं। तीन ही साल में उस गाँव में भी एक युग बदल चुका था। स्वामीजी के भक्तों में बहुत-से स्वर्ग सिधार चुके थे, जो पुराने बड़े-बूढ़े थे। नवीनों में, सनातन-धर्म पर, बहुत-सी घटनाओं के कारण, विश्वास सुदृढ़ हो रहा था। नई सुनी घटनाओं में पुत्रवाली कई थीं, जो स्वामीजी के प्रसाद के कारण फलवती हुईं, ऐसी प्रसिद्धि पा चुकी थीं। स्त्रियाँ कहती थीं, भभूत देने को क्षण-भर भी पूरा नहीं हुआ कि बच्चा पेट में आया। ऐसी बच्चेवाली ज्यादातर वे ही थीं, जिनके सोलहवें साल लड़का

न होने पर घरवाले बाँझ कहने लगे थे, और जिनके पतिदेव तब तक चौदहवाँ साल पार कर रहे थे, और सहवास, घरवालों की पवित्र धर्म-रुचि की ताड़ना से, रोज़ करना पड़ता था। अस्तु। स्वामीजी की उस गाँव में कहाँ तक इज़्ज़त हो सकती थी, आप स्वयं अंदाज़ा लगा लीजिए। उनकी प्रसिद्धि उस समय केवल उसी गाँव की दिशाओं में न बँधी थी। स्त्रियों के व्यक्तिगत व्यवहार ने, स्त्रियों के ही प्रमुख, नज़दीक-नज़दीक क़रीब सभी गाँवों में विकीर्ण कर दी थी।

सेवा के उद्योग में झुके हुए लोगों से वार्तालाप करते-करते अजित के होंठ जल गए। प्राणों में उस आग की लपटें उठने लगीं, जो अपने प्रकाश में इस भारतीयता के कुबड़े रूप को देखती हैं। अनिच्छा-पूर्वक दूसरों की इच्छा से सहयोग करनेवाले स्वामीजी अब के प्रभाव डालनेवाले पहले रूप में न थे, थे प्रभावितों की श्रद्धा की बिगड़ी हुई सूरत देखनेवाले रूप में।

एक मेला लग गया। शाम को स्त्रियों का झुंड उमड़ा। पूर्ववत् भभूत देना बराबर जारी रहा। संध्या पार हो गई। एक पहर रात बीती, धीरे-धीरे दर्शक और प्रार्थियों का आना-जाना बंद पड़ा। डेढ़ पहर तक बिलकुल बंद हो गया। एक चित्त से स्वामीजी राधा को ध्यान कर रहे थे। इतने आदमी आए-गए, इनमें अपना एक न था, वे सब अपने थे। एक राधा थी, जो दूसरे के लिये होकर सबकी थी, इसलिये महात्मा का सुंदर अर्थ से निकटतम संबंध था।

पहली ही तरह, वैसी ही काली मूर्ति फिर मुस्किराती हुई स्वामीजी के सामने खड़ी हो गई। उसकी भी गोद में एक बच्चा था। स्त्रियों के बाज़ार में स्वामीजी की इज़्ज़त बढ़ा रखने की नीयत से, स्वामीजी की ही भभूत से बच्चा हुआ, इस प्रकार की वह भी वहाँ की स्त्रियों में एक मुख्य नायिका थी।

मा ने पहले अपने बच्चे का सिर स्वामीजी के पैरों पर रक्खा—काला-काला, तगड़ा-तगड़ा, सुंदर बच्चा देखकर स्वामीजी ने गोद में उठा लिया, तब खुद प्रणाम किया।

बच्चे को मा की गोद में देकर संक्षेप में, अपनी विपत्ति की कथा, विजय का कैद होना, अब तक छूटने की संभावना आदि स्वामीजी सुना गए। राधा विस्मय, दुःख और सहानुभूति से, कभी रोकर, कभी ढाढ़स बँधाती हुई सुनती रही। फिर उसका और वहाँ का हाल स्वामीजी ने पूछा। राधा ने कहा, जब वह गए, उसके कुछ ही दिनों बाद वह भी कानपुर चली गई थी, तब से कई बार आ चुकी और उनकी राह देख चुकी है, अब के बच्चे का यहीं मूड़न करवाने के विचार से आई है। गाँव के महादेव जिलेदार को सदर बुलावा आया था, इसलिये गया हुआ है। वहाँ से कहीं भेज दिया गया है, कब लौटेगा, क्या बात है, वह नहीं जानती। पर इतना वह कह सकती है कि कहीं कुछ दाल में काला है, तभी उसने कई रोज़ से मुँह नहीं दिखाया। यहाँ उसकी और मालिक की काफ़ी बदनामी फैल चुकी है।

अब सब लोग जान गए हैं। राधा ने यह भी कहा कि म लिक अब राजा हो गए हैं। अजित ने पूछा, राधा कब तक यहाँ रहेगी, और कानपुर कब जायगी, और कानपुर में, कहाँ, किस मुहल्ले में वह रहती है, उसका क्या पता है। राधा ने बतलाया, अजित ने एक कागज़ पर लिख लिया। फिर पूछा, गाँव के मालिक इस वक़्त कहाँ हैं। राधा ने कहा, वह नहीं कह सकती; पर उनकी 'लखनऊ और सदर', 'लखनऊ और सदर' यही रफ़्तार रहती है।

मिलकर, ख़ूब बातें कर, लड़के से दंडवत् करा, .खुद चरण छूकर, फिर मिलने की अपनी आशा की याद दिला, राधा अजित से बिदा हुई।

मुरलीधर का इस समयवाला पक्का पता मालूम कर अजित कानपुर आया। वीणा के घर आ कई रोज़ की थकावट दूर करने के लिये स्नान-भोजन कर आराम करने लगा। व्रजकिशोर अपने काम पर गया था। द्वार बंद कर वीणा पंखा लेकर बैठी। अजित पंखे की हवा में सो गया।

जब जागा, तब व्रजकिशोर आ चुका था। उठकर, वीणा से चाय बनवाकर, पीकर, व्रजकिशोर को साथ बाहर बातचीत करने के लिये बग़ीचे की तरफ़ ले गया, और वहाँ निश्चिंत एकांत में वीणा के साथ अपने विवाह की आज्ञा माँगी, और शीघ्र एक ऐसे ही विवाह के लिये तैयार होने को कहा। व्रजकिशोर लजाकर बोला, इसके लिये मेरी राय की क्या जरूरत थी, आप

स्वयं उससे विवाह कर ले सकते थे, और इससे बड़ा सौभाग्य वीणा का और क्या होगा ?

निश्चय के अनुसार, अजित वीणा को साथ लखनऊ ले आया, कुछ दिनों तक होटल में, फिर मुरलीधर के निवास-स्थल से क़रीब, एक अच्छा-सा खाली मकान किराए पर लेकर, रहने लगा। यहाँ वीणा का नाम शांति बदल दिया। कुछ ही समय में अनेक लोगों से पहचान कर ली। स्नेहशंकर की तारीफ़ शोभा को खोजते हुए पहले सुन चुका था। देखा, उसके मकान से स्नेहशंकर की कोठी भी नज़दीक पड़ती है। देखा, मुरलीधर एक किराए की कोठी में रहते हैं, और स्नेहशंकर के यहाँ एक सुंदरी कुमारी भी है।

( २२ )

कुछ दिनों से राजा मुरलीधर पं० स्नेहशंकरजी की बगल में एक किराए की कोठी लेकर रहते हैं। जिस उर्वशी को पहले एक दिन थिएटर-हाल में उन्होंने देखा था, उसे पाने की आशा से सरकारी अफसरों के असुर और देवताओं को एकत्र कर समुद्र मंथन शुरू कर दिया। पर असुरों की तरह रज्जु-रूप शेष के फणों की ओर नहीं पकड़ा। सोचते थे, नाराज होकर शेषजी ने कहीं चोट की, तो उर्वशी के उठने से पहले मैं ही उठ जाऊँगा। अतः बराबर पूछ की ओर पकड़ने का ध्यान रखते थे। पर एक गलती उन्होंने की। केवल रत्न-प्रभा की आशा रक्खी, जहर के उठने की सोची ही नहीं।

स्नेहशंकरजी के मकान के दो-तीन इकमंजिले मकानों के बाद राजा साहब की कोठी है। यहाँ-वहाँ के दूसरी मंजिल-वाले मजे में दृष्टि द्वारा आदान-प्रदान कर सकते हैं। राजा साहब के पड़ोस में आने पर स्नेहशंकरजी को मतलब मालूम हो गया। उन्होंने एक दिन अलका को पास बुलाया, और स्नेह से कहने लगे—“वह जो कोठी है, उसमें मुरलीधर अब आकर टिके हैं। यह उनका मकान नहीं। यह वही मुरलीधर हैं, जिनके कारण तुम्हें घर छोड़कर एक दिन निकलना पड़ा था।

इनका मतलब यहाँ आने का अच्छा अवश्य नहीं. और हो-न-हो लक्ष्य तुम्हीं हो।"

अलका अब वह अलका नहीं। यद्यपि अभी उसे कुछ दिन पिता के पास और पढ़ना है, पर उसे अपने विचारों पर निश्चय होने लगा है, और पिता भी घूमने-फिरने और मिलने-जुलने में पहले से उसे अधिक स्वातंत्र्य दे चले हैं।

"जैसा आप कहें, करूँ," नम्र-निश्चल पलकों से पिता को देखकर पूछा।

"सिर्फ, कुछ सावधान घूमने-फिरने के समय रहना, और इसके मर्ज की दवा कोई कर ही देगा।"

"किसी दूसरे का भरोसा रखना कमजोरी है। जो ऐसे-ऐसे पापों को हाथ बढ़ाते हुए संकोच नहीं करता, पिता, किसी भी समझदार को चाहिए कि उसके हाथ उसी समय काट ले।"

"तुम अधीर होती हो। अपने पापों का फल तत्काल नहीं समझ में आता। उसका ज़हर अवस्था की तरह ठीक अपने समय पर चढ़ता है। तुम जानती हो, संस्कारों के कारण शरीर का अस्तित्व है। नवीन संस्कारों का शरीर बाल्य और शैशव में बीज-रूप जब तक रहता है, उसका यथार्थ जीवन समझ में नहीं आता। पर वे बुरे भावनाओं के पुंजीकृत संस्कार यौवन की पूर्णता में बदलकर प्रत्यक्ष होते ही, गेंद की तरह मनुष्यों के पद-पद की ठोकरें खाते हैं; उन संस्कारों के उस मनुष्य को ठोकर मारकर ही दूसरे सुखी होते और अपना

उत्तरदायित्व निभाते हैं - बिना मारे रह नहीं सकते - न मारें, तो जीवन के खेल में गोल खाकर हार जायँ।"

"परंतु —"

"परंतु कुछ नहीं, तुम केवल अपनी रक्षा करती रहो, दूसरे पर प्रहार करो, ऐसा अधिकार तुम्हें नहीं अलका! स्पर्धा करो, ऐसा भी नहीं। उसके दौरात्म्य को चोट सहकर, उसे क्षमा कर, तुम अधिक शक्ति धारण कर रही हो। इसलिये वही तुम्हारे चारों ओर चक्कर खा रहा है। यदि अब उसी के किसी ताड़ित केंद्र से पृथ्वी की तरह सक्षम होने की रस्सा-कशी करो, तो तुम्हारे ही हृदय के किसी सत्य-हार का सूत्र इस संघर्ष से टूटेगा।"

"मगर ऐसा होना भी तो प्राकृतिक सत्य है पिता!"

"है। इसीलिये मैं प्रकृति से कहता हूँ, अपने सत्य की रक्षा करो, वह तुम्हारे हृदय से अपना महत्त्व लेकर निकल न जाय।"

अलका नीरज-नेत्रों से पिता के ज्ञानोज्ज्वल उत्पल-पलक देखती रही। अच्छा जाओ, तुम्हें सावधान कर देने के लिये बुलाया था, कहकर स्नेहशंकर एक पुस्तक देखने लगे। अलका अपने कक्ष चली गई। वहाँ से वह कोठी साफ़ देख पड़ती है।

एक दिन अलका ने एक आदमी को उसी मकान से बड़े गौर से देखते हुए देखा। अनुमान से निश्चय किया कि वह

मुरलीधर ही होगा। संयत हो अपने पलँग पर बैठ गई। खिड़की खुली रही। मुरलीधर घंटों तक उस सौंदर्य की शोभा को देखते रहे। अलका सावित्री की लिखी हाल ही की प्रकाशित 'पत्रिका'-नाम की उपन्यास-पुस्तिका, जो उसी रोज मिली थी, पढ़ रही थी। पुस्तक की असमाप्त कला अलका को बहुत पसंद आई। जब आँख उठाकर देखा, वह मनुष्य उसे देख रहा था।

अलका उसकी दृष्टि के ताप में ऐसी जली कि उस दिन से आँचल-बाल आदि का जान-बूझकर सँभाल न रखने लगी। फिर उस तरफ जहाँ तक हो सका, ज्ञान-पूर्वक नहीं देखा।

इसी के कुछ दिन बाद एक नए परिवार से अलका की घनिष्ठता बढ़ने लगी। अजित और उनकी स्त्री शांति एक दिन पं० स्नेहशंकरजी से मिलने आए। बातचीत से स्नेहशंकरजी बहुत खुश हुए। अजित ने अपना नाम, ग्राम, सब ठीक-ठीक बतलाया, सिर्फ मुरलीधर की मुरली छीनकर बेसुरे राग की सजा देनेवाला मतलब छिपा रक्खा।

शांति कभी-कभी अलका के पास जाने लगी। दोनों के सखित्व की शाखा में स्नेह के वसंत-पल्लव फूटने लगे।

( २३ )

प्रभाकर को देखने के बाद अलका के हृदय-पुष्प की अक्षय सुरभि मन के मारुत-झकोरों से पुनः-पुनः उसी ओर बहने लगी। अलका इस सुखकर प्रवाह में स्वयं बह जायगी, ऐसी कल्पना न कर सकी। वह अपने सूक्ष्म तत्त्व में सुरभि के सिवा और कुछ नहीं, यह वह जानती है, पिता के पास ऐसे सिद्धांतों की पुनः-पुनः आवृत्ति सुन चुकी है, साथ ही वह कह चुके हैं, यथार्थ प्यार जीवों को देने पर वृत्तियों का खिंचाव नहीं रहता, तभी स्वतंत्र रूप से दूसरों को प्यार किया जा सकता है, स्वार्थ लेश-मात्र में रहते ऐसा संभव नहीं। अलका के हृदय को विश्वास है, वह किसी प्रलोभन या स्वार्थ से प्रभाकर की ओर नहीं खिंच रही। वह उससे कुछ भी नहीं चाहती। वह एक सच्चा युवक है, वीर है, त्यागी है, इसीलिये उससे मिलकर बातचीत करने, उसकी बातचीत सुनने को जी चाहता है। पंकिल प्रेम से मनुष्य की आकृति कैसी बन जाती है, वह तेज वायु में अच्छी तरह दीख पड़ती है। पड़ोस में भी एक उदाहरण है। ये लोग प्राणों तक पहुँचकर नहीं, किसी स्वार्थ का परिणाम सोचकर, मतलब गाँठकर चाहते हैं, इसलिये इनकी चाह चर्म-चक्षुओं की पहुँच तक परिमित और चर्म-देह

के सौंदर्य तक सीमित है। पर प्रभाकर ने तो अच्छी तरह उसे देखा भी नहीं, आँखें झुकाए हुए आँखों के दर्शन को पहले ही दृष्टि के तत्त्व से बेदखल कर चुका है। चुपचाप अपनी आत्मा से मानकर, और समझदार को मनकर चला गया। क्या अलका ऐसी ही समझदार नहीं? वह जरूर है, उसके प्राणों से आवाज़ आई।

हाय! इतने तत्त्वों के मार्जित ज्ञान के भीतर, इतनी पति-तपस्या के कारण का क्या यही कार्य है कि एक अपरिचित तपस्वी सबसे प्रिय वस्तु छीनकर चला जाय, और लुटी हुई को किसी तरह भी समझ में न आए कि यह उसी की दुर्बलता का प्रबल प्रमाण है? दूसरे दिन पिता से अलका ने प्रभाकर की बातचीत में प्रशंसा कर कहा कि ऐसा एकनिष्ठ एक भी मनुष्य उसने बाहरी दुनिया में नहीं देखा, और आज वह उसके डेरे पर उससे मिलने जायगी, पिता आज्ञा दें। स्नेहशंकर ने आज्ञा दे दी।

अलका ताँगा बुलवाकर चल दी। स्नेहशंकर मुस्किराए—साम्य भाव की इच्छा और उसकी पूर्ति जीवन की सबसे पुष्ट खूराक है, यह नहीं मिलती, तो वैषम्य के संसार में शांति दुर्लभ है।

पूछकर ताँगेवाले ने प्रभाकर के मकान के सामने रोका। अलका उतर गई। प्रभाकर बैठा था। आज तक ऐसा आश्चर्य जीवन में उसे दूसरा नहीं देख पड़ा। सम्भ्रम ज़बान से केवल निकला—"आप!"

"हाँ, आप मुझे देखकर आश्चर्य में हैं, पर शायद उन स्त्रियों के लिये, जो राह पर भीख माँगती हैं, आपको आश्चर्य न होगा। आपने सोचा होगा, आश्चर्य भी हमारी पराधीनता के मुख्य कारणों में से है।"

इज़्ज़त के साथ प्रभाकर ने कुर्सी खींचकर बैठने को दिया। फिर विनय-पूर्वक पूछा—"आपका नाम ?"

मुस्किराकर अलका ने जवाब दिया—"मुझे अलका कहते हैं। उस रोज़ वहाँ आपने बहुत अच्छा उत्तर दिया !"

"कमिश्नर साहब आपके कोई होते हैं ?"

"ऐसे कोई नहीं होते, मेरे पिताजी के मित्र हैं, और उनसे कहकर मुझे कन्या-रूप ग्रहण किया है। पर अभी मैं अपने पिताजी की ही मातहत हूँ। उनसे पढ़ती हूँ। आप क्या मेरे पिताजी से एक बार मिल लेंगे ? आपको उन्हें देखने पर हर्ष होगा।"

"यह मैं आपकी ही सदाशयता से मालूम कर रहा हूँ। आपके पिताजी का शुभ नाम ?"

"पंडित स्नेहशंकर।"

"स्नेहशंकर ? जिन्होंने अँगरेज़ी में 'धर्म और विज्ञान' नाम की पुस्तक लिखी है ?"

"जी हाँ, उनकी कई और भी किताबें हैं।"

"मैं अवश्य उनके दर्शन करूँगा। मेरा सौभाग्य है, जो उनकी कन्या मुझे दर्शन देकर यहाँ कृतार्थ करने पधारीं।

मैंने उनकी एक ही पुस्तक पढ़ी है, और ऐसे मार्जित विचारों की दूसरी पुस्तक नहीं देखी।"

अलका प्रसन्न है। कपोलों पर रह-रहकर मुस्किराहट आ जाती है।

"आप-जैसी सहृदया विदुषियों को भारत की अशिक्षा से ठुकराई हुई, समाज की अपेक्षित स्त्रियाँ करुणा-कंठ से प्रतिक्षण अशब्द आमंत्रण दे रही हैं," व्यथा से भरी भारी आवाज़ में प्रभाकर ने कहा।

"क्या आपको मेरी सेवा की ऐसे समय ज़रूरत होगी? कभी हो, आप मुझे आज्ञा देने में संकोच बिलकुल न करें। मुझे आपकी आज्ञानुवर्तिता से सुख होगा।" आँखें झुका प्राणों के पूर्ण दानवाले शांत संयत स्वर से अलका ने उत्तर दिया।

प्रभाकर को जान पड़ा, यह प्रभा स्वर-मात्र से उसे स्वर्गीय कर दे रही है। नारी-चरित्र का जो चित्र आँखों के सामने आया, चिरकाल तक प्रोज्ज्वल कर रखनेवाली पवित्र शक्ति प्राणों के समीर-कोष में भर गया, जैसे सभी तत्त्वों के एक बीज-मंत्र ने अपनी विभूति का क्षणिक संसार समझा दिया हो, और वह ऐश्वर्य से एकमात्र सत्य में बदलकर स्थायी हो गया हो।

प्रभाकर बोला—"मैं आपकी इतनी उक्ति-मात्र से आपका दासानुदास बन गया हूँ।"

अलका हँस पड़ी। बोली—"ज़्यादा भक्ति अच्छी नहीं होती। पिताजी कहते हैं, यदि मनुष्य के रूप में होंगे, तो इष्ट-देव में भी भक्त को दोष दिखलाई पड़ेंगे। इसलिये फिर एक रोज़ मेरे किसी दोष पर आपको मुझसे ऐसी ही घृणा हो जायगी। आप देश-भक्त हैं, इसलिये भावुकता की मात्रा आपमें कुछ अधिक है।"

प्रभाकर ने भी रसिकता की—"झुकी हुई नज़र उठती ही है, आप ठीक कह रही हैं, पर उसका अर्थ भी बुरा नहीं लगाया गया। दोष को व्यापक विचार से देखने पर मृत्यु के जीवन की तरह वह गुण हो जाता है।"

"आप तो बड़े पक्के दार्शनिक जान पड़ते हैं।"

"चूँकि बिना दर्शन के पग-पग पर चोट खाने का डर है।"

"पर जहाँ पग रखनेवाली गुंजाइश न हो?"

"वहाँ रास्ता बताने के लिये आप लोग हैं।"

अलका लज्जित हो गई। प्रभाकर भर गया। आनंद में निश्चल कुछ देर तक अपने में लीन बैठा रहा। फिर कहा—"आपकी मुझे ज़रूरत है। मैं यहाँ के क़ुलियों की स्त्रियों के लिये एक नैश पाठशाला उनकी खोलियों के पास खोलना चाहता हूँ। आप केवल दो घंटे, शाम सात बजे से नौ बजे तक, दीजिए। पर आप इतना कष्ट—"

"हाँ, स्वीकार कर सकूँगी। मेरी दीदी तो ऐसा ही करती हैं, और इस काम में उन्हें बड़ा आनंद मिलता है।

मेरे पिताजी ने मेरी शिक्षा का श्रीगणेश इसी विचार से किया था। उनसे कहकर मैं आज्ञा ले लूँगी।"

"पर मुझे अगर सज़ा हो जाय, तो आपका काम—"

"आपको सज़ा न हो, मैं इसके लिये कमिश्नर साहब से कोशिश करूँगी।"

प्रभाकर लज्जित हो गया। जैसे उसका सर उठा रखनेवाली सारी शक्ति इस एक बात में सीता की तरह अपमान के भार से पाताल समा गई। बोला—"मैं आपसे सबसे पहले यही विनय करता हूँ कि आप मुझे बचाने के लिये एक बात भी कमिश्नर साहब से न कहें। देश के इस उद्देश में आपके भाग लेने पर कमिश्नर साहब समझाने की अपेक्षा ज़्यादा समझेंगे, और इस समझ से, मेरे जेल जाने पर, काम करते रहने की अपेक्षा अधिक फल होगा, और उन लोगों को भी, जो मुझसे कुछ सीखते हैं, अब से एक गहरी सीख मिलेगी।"

शांत शिखा-जैसी बैठी हुई प्रभाकर की प्रभाव छोड़नेवाली शब्दावली अलका सुनती रही। इस पर कुछ कहनेवाली क़ायदे की बात थी ही नहीं। सुनकर श्रद्धा की आँखों एक बार देखा, और पलकें झुका लीं।

भाव के भार से संभ्रम अलका को उभाड़कर हल्के वातावरण में ले आने के विचार से प्रभाकर ने कहा—"आप मुझे मिलीं, यह जेल जाने के फल से ज़्यादा मिला। साधना में इससे सिद्धि मैं नहीं चाहता, मुझे उस पर विश्वास भी नहीं।"

हल्की हँसी से अलका के होंठ रँग गए। कहा—"साधक से यदि अधिक साधना लेने की मेरी इच्छा हो, तो साधक अपनी तरफ़ से अवश्य कुछ नहीं कह सकता।"

"नहीं कह सकता; अवश्य साधना के खंडित हो जाने का भय न हो।"

"सिद्धि पाए हुए साधक की साधना विघ्नों में भी निर्विघ्न रहती है।"

कहकर अलका उठकर खड़ी हो गई।

"क्या आप अब जाना चाहती हैं?" प्रभाकर ने भी उठकर पूछा।

"हाँ," सभक्ति, सहास नम्र अलका ने कहा।

"अच्छा, तो आज्ञा दीजिए कि गणों के साधक को गणेश की सिद्धि के दर्शन होंगे," प्रभाकर ने प्रार्थना की।

"मैं कल भी इसी समय यहाँ आऊँगी, अगर आपको कोई दिक़्क़त न हो।"

"नहीं, मुझे कोई दिक़्क़त न होगी, बल्कि मैं कृत-कल्प हूँगा। हाँ, समय तो नहीं है, पर क्या आपको आपके घर तक छोड़ आऊँ?"

"हाँ, मैं ले चलने के लिये ही आई थी, मेरे पिताजी को देखिए।" दोनो ताँगे पर बैठकर चले।

# ( २४ )

"अलका दीदी मुझे बड़ी अच्छी लगती हैं, मुझे खूब प्यार करती हैं।" वीणा ने वीणा-कंठ से अजित से कहा।

"यह तारीफ़ तो बहुत बार कर चुकी हो।" कुछ सोचते हुए कुछ रुखाई से जैसे अजित ने कहा।

"एक तेज बाबू हैं, वह इन्हें बहुत चाहते हैं।"

"हूँ।" अजित सोचता रहा।

"पर यह ऐसा बेवक़ूफ़ बनाती हैं कि समझकर भी नहीं समझता।"

"हूँ।" अजित पेंसिल-काग़ज़ लेकर एक नक़शा बनाने लगा।

"पर एक नेता प्रभाकर हैं, उन्हें यह चाहती हैं।"

अजित ने एक त्रिकोण बनाया, और हर कोण में एक बात लिखकर उसकी चाल दूसरे कोण की तरफ़ की।

"वह आए थे। पिताजी से बड़ी देर तक बातचीत हुई। अलका दीदी कहती थीं।"

अजित ने कहा—"हम लोग बहुत दिनों तक यहाँ नहीं रह सकते। हमें जल्द अपना काम ठीक कर लेना है।"

"तो मेरी बात तुमने नहीं सुनी?"

"पहले तुम मेरी बात तो सुन लो, फिर तो मुझे तुम्हारी ही बातें जिंदगी-भर सुननी हैं।"

वीणा मन से नाराज़ हो ख़ुश हो गई। अजित ने कहा—"यह देखो, यह नई साड़ी, शमीज़, लेडी मोज़े और जूते तुम्हारे लिये क़ीमती देखकर ले आया हूँ। पाउडर, सेंट वग़ैरह तो होंगे ही। अपने लिये भी अच्छा अँगरेज़ी सूट ख़रीद लिया है। आज चलकर ज़रा राजा साहब से मिलना है। जितनी अँगरेज़ी जानती हो, बीच-बीच लड़ा देना।"

वीणा आनंद से छलकती, तान मुरकी-सी आशिरश्चरण काँप उठी। पुलकित प्रवालोज्ज्वल आँख से प्रिय को देखती हुई बोली—"मुझसे न होगा।"

"होगा क्यों नहीं, होना ही होगा, और कभी-कभी अपनी उसी सुरक्षित ब्रह्मशिरा शक्ति का आँख से उपयोग अर्थात् कसकर प्रहार कर दिया करना।"

अजित ने तमाम अंगों से उसे गुदगुदा दिया। खिलकर, अजित को पकड़कर हिलती हुई बोली—"मुझसे हरगिज़ ऐसा न होगा अभी से बतला देती हूँ, उसके यहाँ मैं नहीं जाती।"

"देखो," अजित ने गंभीर होकर कहा—"वक़्त पर गधे को बाप कहा जाता है।"

"तो आप बाप कहिए, मुझसे न होगा।"

"देखो, धोबी के साथ चाहे कुछ बग़ावत करें, पर धोबिन

के हाथ गधे बराबर सधे रहते हैं, यानी इतने समझदार होते हैं। किसकी बात पर कान-पूँछ न हिलाना चाहिए, इतना वे भी जानते हैं।"

"तभी तो कहती हूँ, तुम मेरी बात मान जाओ।" हँसकर वीणा दूसरी तरफ़ चल दी। अजित कुछ अप्रतिभ होकर सँभल गया। कहा—"तुम व्यर्थ के लिये इतना चौंकती हो। तुम लोगों का यथार्थ तत्त्व योरपवाले समझते हैं। वे तुम्हारे मुखों को महत्त्व में हुक्क़ा मानते हैं, जो सहस्रों मुखों से चुंबित होकर भी चिर-पवित्र रहता है।"

"अर्थात् ?" कुछ रुखाई से वीणा बोली।

"अर्थात् वंशी का फूँकवाला छेद जिस तरह होंठ-होंठ से लगने पर भी अपवित्र नहीं माना जाता, उसी तरह स्त्री का मुख है। कृष्णजी की वंशी में यही रूपक है। वह सोलह हज़ार गोपियों के मुख इसीलिये चूम सकते थे, और चूमकर पवित्र कर देते थे, क्योंकि उन्हें वंशीवाला तत्त्व मालूम था।"

कुछ अप्रतिभ-सी होकर वीणा रोने लगी। अजित आँसू पोंछने लगा। कहा—"तुम नाराज़ हो गईं! मैं ज़रा नास्तिक हूँ, इसके लिये तुम्हें बराबर क्षमा करते ही रहना होगा। पर तुम्हारा धर्म तो यही है—जहाँ पति हो, वहाँ सती भी हो। इसलिये अब साथ चलकर इस यज्ञ में अपना आधा काम पूरा करो। आज्ञा हो, तो मैं ही वेशकारी बनकर देवी को सजा दूँ।" कहकर आँचल का एक भाग धीरे से खींचा।

पकड़कर, कुछ प्रसन्न होकर, वीणा ने कहा—"मैं पहन लेती हूँ।"

"तुम व्यर्थ नाराज हो गई," अजित ने कहा—"स्वभाव में जितने भाव हैं, सब रहते हैं। समय पर उनका उपयोग करना किसी पाप में दाखिल है, यह मेरी समझ में नहीं आया, शायद कभी आएगा भी नहीं। फिर यह नाटक ऐसा है, जिसकी तुम्हीं प्रधान अभिनेत्री बन सकती हो। अब कहो कि मेरा कौन-सा कुसूर था?"

वीणा मोज़े पहन रही थी। आँखों में चपल मुस्किराई।

अजित ने कहा—"बहादुरी तो बहुत पहले से स्त्रियों को ही मिली हुई है। 'साहसं षड्गुणञ्च' छःगुनी हिम्मत स्त्रियों में पुरुषों से ज्यादा है, अवश्य 'लज्जा चापि चतुर्गुणा' यह भी कहा गया है, पर हिम्मत में लाज से ड्योढ़ा बल ज्यादा है, इसलिये जब चाहें, स्त्रियाँ हिम्मत से लाज को दबा सकती हैं।"

वीणा जूते पहनकर, कपड़े बदलने और राग कर लेने के लिये दूसरे कमरे में चली गई।

अजित बैठा सोच रहा था कि स्कीम किस तरह पूरी हो।

खूब सजकर वीणा बाहर निकली। एक बार जी भरकर अजित देखने लगा। मुस्किराकर वीणा ने पूछा—"कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रही?"

उठकर अजित ने सर की साड़ी एक बगल कर पिन लगा दी। मनीबैग दे दिया। ताँगा बाहर खड़ा था, दोनो बैठ गए।

अजित ने रॉयल होटल के पते से एक पत्र अँगरेज़ी में नीरजा के नाम से लिखकर पिछले दिन पोस्ट कर चुका था, और एक कमरा किराए पर लेकर, ईंटें भरकर दो-तीन क़ीमती केस और बाक्स, कुछ नए कपड़े बाहर से हिफ़ाज़त से लपेटकर रखकर, वक़्त पर भोजन कर, कुछ देर तक अपने अस्तित्व के प्रमाण मज़बूत कर चला आया था।

राजा मुरलीधर समय देखकर नीरजादेवी की प्रतीक्षा में बैठे थे कि आगे-आगे नीरजादेवी और पीछे-पीछे उनके सिकत्तर साहब आते हुए देख पड़े। बेयरा ने खबर दी। आधुनिक क़ायदे से महिलाओं को सम्मान देनेवाले राजा साहब ने कुछ क़दम बढ़कर स्वागत किया।

राजा साहब के साथ मोहनलाल भी थे। अजित ने अँगरेज़ी में पूछा—"क्या मैं मिस जस्टिस लेले से आपको राजा मुरलीधर साहब के नाम से परिचित करूँ ?"

"कीजिए।"

अजित ने वीणा से अँगरेज़ी में परिचय कह दिया। वीणा कुछ समझी नहीं, सिर्फ़ सर हिला दिया, और मिलाने को बढ़े हुए राजा साहब के हाथ से हाथ मिलाया।

तमाम बातें अजित ही कहने लगा, मिस साहबा अभी दो महीने हुए विलायत से लौटी हैं। वहाँ पढ़ती थीं। लखनऊ घूमने आई हुई हैं। अच्छी मोटर यहाँ किराए पर नहीं मिलती। यहाँ के गेट्स् इन्हें बहुत पसंद हैं। सड़कें बड़ी अच्छी हैं। काफ़ी

सफ़ाई रहती है। पार्क ख़ूब बड़े-बड़े हैं। जस्टिस लेले ने लखनऊ के राजा और ताल्लुक़ेदारों में आपकी बड़ी तारीफ़ अपनी पुत्री से की है। पहले एक बार वह आए थे, तब राजा साहब के पिता थे, उन्होंने जस्टिस साहब की बड़ी मेहमानदारी की थी।

राजा साहब ने स्वभावतः वैसी ख़ातिर करने का वचन दिया।

मौक़ा देखकर अजित ने एक बार सबूट पद धीरे से पटक दिया। सुनकर, सिखलाई वीणा ने कहा—"थैंक्स।"

जो दृष्टि कहने का प्रयत्न करती है, पर हृदय से स्वतः उठे हुए शब्दों की तरह नहीं कहती, उसी व्यवहारवाली सकाम दृष्टि से राजा साहब कह रहे थे, "मैं तुम्हारा हूँ," और जो दृष्टि छल-कर अपने मार्ग से धारा की तरह बह जाती है, उससे वीणा ने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारी हूँ।"

काम मनुष्य को स्थिति से स्खलित कर बहा ले जाता है, जहाँ से उसे एक रोज़ उसी जगह लौटना पड़ता है, जहाँ से वह चला था, यदि कभी जीवन में सुअवसर प्राप्त हुआ; नहीं तो एक जीवन के लिये इसी तरह मनुष्य पथ-भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है।

बातचीत कर चलते समय अजित ने राजा साहब से कहा—रात आठ बजे मिस नीरजा साहबा आपको आने के लिये आमंत्रित करती हैं। राजा साहब ने सविनय प्रस्ताव स्वीकृत किया। अभिवादन आदि करके वीणा और अजित ताँगे पर बैठे।

राजा साहब ने अर्थ लगाया, योरप में रही है, पूरी छटी है, पर सभ्यता से चुपचाप बैठी रही।

मोहनलाल ने कहा—"जाइए, मिस साहबा का न्योता है।" कहकर मुस्किराया।

होटल में सिर्फ़ अजित का नाम विक्रम लिखा था।

अच्छी पार्टी हुई। राजा साहब को खूब खिला-पिलाकर कुमारी नीरजा ने बिदा किया। ड्राइवर और अर्दली सँभाल-कर राजा साहब को ले गए। प्रातःकाल उन्हें पता चला, उनके कोट की जेब खाली है। होटल में पता लगाया, वहाँ कोई न था। पिस्तौल और गोलियाँ चुरा गई।

( २५ )

इधर कुछ दिनों से प्रभाकर के प्रस्ताव के अनुसार रोज दो घंटे के लिये कुलियों की खोलियों में उनकी स्त्रियों को पढ़ाने के लिये अलका जाया करती है। कन्या का रुख देखकर स्नेहशंकरजी ने आज्ञा दे दी है। कमिश्नर साहब को मालूम होने पर कुछ नाराज हुए और डरे भी। अलका ने कह दिया है, यदि आप ऐसी पुत्री की तलाश में हों, जो पुन्नाम नरक में आपके लिये स्थायी वास-स्थल तैयार कर सके, तो मुझसे उस प्रयोजन की आशा न रक्खें। तब से कमिश्नर साहब कभी-कभी वैदिक संपत्ति की रक्षा के लिये भी सोचते हैं।

राजा मुरलीधर बहुत दिनों तक अलका की आशा-आशा में रहे। आशा की नाव के खेनेवाले मल्लाह उन्हें पार कर स्वयं पैसे से निराश नहीं होना चाहते थे, इसलिये अपार सागर में वे केवल खेते थे, और मास्टर मोहनलाल भी आज तक दस देकर बीस लिखते आए थे, उन्हें देर के लिये दिक़्क़त न थी, जब कि तअल्लुके की आमदनी सत्य के अस्तित्व की तरह चिरंतन थी, और नौकरी बालू की भीत। दीर्घकाल तक जब कोई उपाय न मिला, केवल उपाय करनेवालों की संख्या बढ़ती रही, तब आप-ही-आप राजा साहब ने एक

दिन महादेवप्रसाद को याद किया। आने पर खुद अपना मतलब समझाया, और अपने कमरे से अलका को पहचान लेने के लिये दिखाया। यह भी कह दिया कि यह असिस्टेंट डिप्टी-कमिश्नर साहब के यहाँ अक्सर जाया करती है। महादेव ने अच्छी तरह देखा, फिर राजा साहब की दूरबीन उठाकर देखा। देखकर दंग रह गया।

"कुछ तअज्जुब में हो", राजा साहब ने कहा—"तअज्जुब की चीज ही है।"

"हुजूर !" महादेवप्रसाद ने एक बार फिर दूरबीन से देखकर कहा—"यह तो वही शोभा है, जो भग गई थी।"

"ऐं ! वह है ?" राजा साहब आश्वस्त होकर बोले—"जिस स्वर में दूसरी यह ध्वनि होती है कि हमारी रियाया है, हम जब चाहें, भोग कर सकते हैं।"

"हाँ सरकार, वही है, फ़र्क़ कहीं जरा-सा नहीं दिख रहा। क्या हुजूर जानते हैं, यह मकान किसका है ?"

"उसी सनेहसंकरा का है।"

"हुजूर, वही है यह। स्नेहशंकर हमारे यहाँ से कुछ ही फ़ासले पर तो रहते हैं। जरूर इन्होंने इसे भगाया होगा। एक सावित्री-सावित्री कहकर इनके यहाँ है, वह भी भगाई हुई है, लोग कहते हैं। इसको ले आना कौन बड़ी बात है ?"

कोई बड़ी बात नहीं, राजा मुरलीधर के हृदय में प्रतिध्वनि हुई। अलका अब पढ़ाने के लिय रात को रोज़ जाती है, यह

ताड़कर महादेव ने कहा—"मोटर पर आप बैठ लीजिए, क़ुलियों की खोली के उधरवाला रास्ता आठ-नौ बजे तक एक तरह बंद हो जाता है, ताँगेवाले को मैंने साधकर मुट्ठी में कर लिया है, वह भी मदद करेगा, दो सिपाही ले चलें, बस, पकड़-कर मोटर पर बैठाल लेंगे, और सदर लेते चले चलेंगे ; फिर वह तो वह, उसके देवता अपने क़ाबू में हैं।" मुरलीधर को बात जँच गई। आज की रात का निश्चय हो गया।

नौ बजे अलका लौटी। अलका के चल चुकने के बाद प्रभाकर चला। कुछ दूर तक एक ही रास्ता चलकर प्रभाकर को घूमना पड़ता था। अलका ताँगे पर आती-जाती थी, प्रभाकर पैदल।

ठीक स्थल पर ताँगा रुका। राह निर्जन हो रही थी। दो आदमी आए और एक-एक हाथ पकड़ लिया। अलका पहले से जानती थी कि उस पर अत्याचार होगा। इसलिये बहुत ज्यादा नहीं चौंकी। एक बार मुँह देख लिया। लोगों ने खींचा। वह चली गई। मोटर पर लोगों ने बैठाल दिया। मोटर चली, तो हाथ ढीले कर दिए। मालिक की नमकहलाली के प्रमाण-स्वरूप मालिक की बग़ल में ही उसे ला बैठाला था। मालिक ने मुस्किराकर कहा—"बड़ी मिहनत ली। अब के दोबारा तुम्हें पाने की तैयारी की।"

"बड़ी मिहनत ली, अब के दोबारा तुझ पाने की तैयारी की।" कहकर जेब से निकाल ठीक छाती पर पिस्तौल दाग दी।

धड़ाका, खून का फव्वारा, ड्राइवर और सिपाहियों का बेहोश होना और सामने के एक पेड़ से टकराकर मोटर का टूटना जैसे एक साथ हुआ। अलका पूरी शक्ति से सचेत और सक्रिय थी। मोटर टकराने और मुरलीधर की चीख के साथ पिस्तौल वहीं फेंककर, कूदकर जमीन पर आ गई। जल्द चलना चाहा। कुछ क़दम चली, तो शक्ति की अधिकता से पैर और तमाम देह बिजली से जैसे बँध गए। काँपकर गिर गई।

रात के सन्नाटे में गोली की आवाज़ और चीख आते हुए प्रभाकर को सुन पड़ी। निकट जानकर वह उसी तरफ मुड़ा। कुछ दूर चलकर देखा, अलका बेहोश पड़ी थी। सब अंगों से सन्न हो गया। मोटर एक पेड़ से भिड़ी पड़ी थी। पड़े हुए लोगों का चित्र देखकर उसे कारण तक पहुँचने में देर न हुई, यद्यपि गोलीवाली बात उसकी समझ में नहीं आई। अलका को घटना के फैलने और लोगों के आने तक निरापद कर देने के विचार से, अकेला सँभालकर कुलियों की खोली की ओर उठाकर ले चला। अलका भी मूर्च्छित हो गई थी। प्रभा-कर लिए जा रहा था, इसी समय अलका को होश हुआ।

"छोड़ दो।" झिड़ककर तेजी से कहा।

"आप अभी स्वस्थ नहीं हैं।"

"मुझे खड़ी कर दीजिए, मैं इस तरह नहीं जाना चाहती।" प्रभाकर सँभालकर खड़ी करने लगा, पर पैर काँप रहे थे।

उसे फिर गिरने से पहले पकड़ लिया। कहा—"आप मुझे क्षमा करें, आप स्वयं नहीं चल सकतीं।"

"मुझे यहीं लेटा दीजिए, और कोई ताँगा ले आइए।" करुण भाव से अलका ने कहा।

प्रभाकर लाचार हो गया। वहीं अपने कुर्ते पर लेटाकर कुलियों की खोली की तरफ़ गया। घटना-स्थल से काफ़ी दूर आ चुका था। एक कुली को रास्ते पर पीपल के पेड़ के पास जल्द ताँगा ले आने के लिये कहकर लौट आया।

अलका की हालत सुधर रही थी। प्रभाकर धोती के छोर से हवा कर रहा था। इसी समय ताँगा लेकर कुली आया। ताँगे पर सँभालकर प्रभाकर अलका को घर ले आया, और जैसा देखा था, स्नेहशंकर से बयान किया। उस समय स्नेह-शंकर ने प्रसंग पर कुछ भी न कहा, सिर्फ़ उस रात को रहकर अलका की सेवा के लिये प्रभाकर से अनुरोध किया।

रात-भर जगकर प्रभाकर ने अलका की सेवा की। प्रातःकाल शांति उदास होकर सामने आ खड़ी हुई, कहा—"दीदी, पिस्तौल दे दो, वह इसके लिये मुझसे नाराज़ हैं।"

"पिस्तौल का काम मैंने पूरा कर दिया है।" धीरे से अलका ने कहा।

शांति को लेकर आज अजित कानपुर जानेवाला था। पिस्तौल लेने के लिये उसे भेजकर पीछे-पीछे ख़ुद भी आया। स्नेहशंकर भी अलका के पास आकर बैठे थे।

प्रभाकर गुलाब की पट्टी बदल रहा था। उसी समय अजित आया।

देश, काल और पात्र का कुछ भी विचार प्रभाकर को देख-कर उसे न रहा—"विजय! तुम कहाँ रहे भाई?" कहकर उच्छ्वसित बाँहों में भर, झर-झर-झर-झर बहते हुए आँसुओं के निर्झर से अपने चिर-वियोग के दाह को शीतल करने लगा। अलका उठकर बैठ गई। स्नेहशंकर सविस्मय खड़े हो गए।

"तुम्हें वही किसान फिर बुला रहे हैं भाई! क्षमा माँगी है, और क्या कहूँ, कितने प्रयत्न किए, पर शोभा शायद सदा के लिये चली गई!"

अदालत में साबित हुआ है कि शराब के नशे में राजा मुरलीधर ने खुदकुशी की है; पिस्तौल और गोली उन्हीं की है।